स्वदेशी पत्रिका

वर्ष-14, अंक-1, पौष-माघ 2063, जनवरी, 2007

संपादन

विद्यानंद आचार्य

कार्यालय

धर्मक्षेत्र, सेक्टर-8, रामकृष्णपुरम,
नयी दिल्ली-110022 से प्रकाशित।
फोन : 011-26184595

स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 से मुद्रित।

टंकण एवं सज्जा : **प्रेम जोया**

आवरण लेख - 4

सिंगूर आंदोलन ने देश में किसान आंदोलन के लिए नयी जमीन तैयार कर दी है। सिंगूर के बाद यह विरोध नन्दीग्राम तक पहुँच चुका है।

कॅवर पेज

अनुक्रम

आवरण लेख

किसानों को जमीन से बेदखल करती सरकार
- धनपत राम अग्रवाल 4

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की मौकापरस्ती
- राकेश सिन्हा 9

विकास

सामाजिक सुरक्षा का गहराता संकट
- आर. वैद्यनाथन 11

राष्ट्र

दागियों से घिरे मनमोहन
- निरंकार सिंह 14

अर्थव्यवस्था

रोजगार योजना वोट प्राप्ति का जरिया
- डा. भरत झुनझुनवाला 16

कृषि

विफल होता बाजार का मॉडल
- देवेन्द्र शर्मा 18

बहस

मुसलमानों की चिंता किसे है?
- बनवारी 20

इतिहास

'अंतिम मुगल' ने मचाया हड़कंप
- देवेन्द्र स्वरूप 23

व्यापार

खुदरा व्यापार में विदेशी निवेश घातक
- गिरीश अवस्थी 26

स्मृति

अहिंसा, सत्याग्रह और सर्वोदय
- दीपक कुमार सेन 28

समाज

स्वदेशी जीवनचर्या में वैज्ञानिकता
- गजेन्द्र देव शर्मा 30

संस्कृति

धर्म और संस्कृति का अद्भुत संगम 'अर्द्धकुंभ'
- स्वदेशी संवाद 32

रपट

असमानता एवं पर्यावरणीय संकट का बढ़ता खतरा
- विद्यानंद आचार्य 33

देश में किसानों के साथ भेदभाव क्यों?
- स्वदेशी संवाद 35

अखंड भारत - हमारा संकल्प
- आर.पी.दुबे 36

अमर शहीद 'बाबू गेनू' के नाम पर मार्ग का नामकरण... 37

गोवंश

गोवंश का आरक्षण ही राष्ट्रधर्म
- पं. भवानी शंकर 38

पाठकनामा 2

समाचार परिक्रमा 40

पाठकनामा

पूरा देश अफजल को फांसी के पक्ष में

1 नवम्बर 2006 के अंक में बहस के कॉलम में आर.पी.दुबे जी का आलेख अफजल की माफी का औचित्य? में यह लिखा है कि भारत की जनता दो भागों में बंट गई है जो सत्य से परे है। कुछ स्वार्थी व देशद्रोही जो अफजल की वकालत कर रहे हैं, उन्हें देश की जनता नहीं कहा जा सकता। पूरा देश अफजल को फाँसी देने के पक्ष में खड़ा है। **विष्णु**, (राजस्थान)

❐❐❐

विरोधी का फोटो छापना सही नहीं

''स्वदेशी पत्रिका'' का आश्विन–कार्तिक 2063, अक्टूबर 2006 का अंक पढ़ा। पढ़ने पर एक बात देखी उसे आपके ध्यान में लाने का प्रयास कर रहा हूँ। मुख पृष्ठ पर पी.चिदम्बरम जी का फोटो व अन्दर के पृष्ठ पर स्व• दत्तोपंत ठेंगड़ी जी का फोटो छापा गया है। कृपया मेरा ऐसा अनुरोध है कि कम से कम हम लोग अपनी जागरण पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर विरोधी का फोटो न छापें। इस प्रकार फोटो छापकर हम उनका ही प्रचार करते हैं। अन्दर के पृष्ठ पर छापें तो चल सकता है। **नेपाल सिंह**, दिल्ली

❐❐❐

महर्षि वेदव्यास की तुलना अभिनेताओं से करना ठीक नहीं

आपकी लोकप्रिय पत्रिका ''स्वदेशी पत्रिका'' पढ़ी। पत्रकारिता के क्षेत्र में सशक्त, निर्भीक तथा स्पष्ट रूप में स्वदेशी की गुहार लगाना अभिनंदनीय ही नहीं वंदनीय है। श्री सूर्यकान्त बाली जी का आलेख ''मखौल मूल्य नहीं हो सकते'' पढ़ा। सिद्धान्ततः बहुत ही सुन्दर तर्क के द्वारा जीवन मूल्यों का प्रतिपादन पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई।परन्तु मुन्ना भाई ने जो किरदार किया वह अन्डर वर्ल्ड के डॉन का है तथा भाषा टपोरी। गांधी एक विचार है जिसे अहिंसा की भाषा से कोई नहीं समझ पाया। अतः ऐसा व्यक्ति जो अब तक हिंसा की भाषा से हीरो बना रहा अब अहिंसा को अस्त्र बनाकर हीरो बना रहना चाहता है।

बापू यदि पुनः जन्म लें तो शायद वे भी इस देश को यहां के नेताओं को पहचान न पायेंगे। रही बात रंग दे बसंती की, जो कभी ऑस्कर पुरस्कार नहीं पा सकती। क्योंकि यह बसन्ती चोला अधिकांश बेईमान व्यक्ति पहन रहे हैं। वर्तमान में नैतिकता, औपाचारिकता का रूप ले चुकी है। इनसे ऊपर मानवी मूल्य जिसका बहुत बुरी तरह ह्रास हो रहा है। नर नारी परस्पर पवित्र दृष्टि कैसे रख पायेंगे? ऐसे समय जब समूची मानव जाति सामूहिक विनाश की ओर जा रही है, पाश्चात्य संस्कृति, अपसंस्कृति हावी हो रही है, तब उद्‌दालक, अथवा महर्षि वेदव्यास का तपोमय जीवन, इन तथाकथित अभिनेताओं से जोड़ना व तुलना करना श्री सूयंकांत जी की अतिश्योक्ति ही लगती है।क्या ऐसे श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए श्रेष्ठ पिता की सन्तान कदम से कदम मिलाकर चल पाएगीं? **अभय उपाध्याय**, देहरादून

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022
दूरभाष : 26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क ***'स्वदेशी पत्रिका'*** दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्कः 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

अमरीका को भारत के सामरिक कार्यक्रम में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जाएगी।

प्रणव मुखर्जी
(विदेश मंत्री)

नक्सल विचारधारा में मुझे कुछ भी बुरा नहीं लगता। हाँ, उनकी हिंसा गलत है। सामाजिक न्याय के लिए उनका संघर्ष सराहनीय है।

श्री श्री रविशंकर
(आर्ट ऑफ लिविंग के संस्थापक)

विकास हेतु बाजार केंद्रित अर्थव्यवस्था पर निर्भरता ठीक नहीं है।

अमर्त्य सेन
(नोबेल विजेता अर्थशास्त्री)

देश की अदालतों को गरीबों की भी आवाज सुननी चाहिए।

के.जी. बालकृष्णन
(मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय)

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ एवं स्वास्थ्य मंत्रालय के बीच गठजोड़ के कारण भारत में इलाज करवाना आम लोगों की पहुँच के बाहर हो गया है।

बाबा रामदेव
(योग गुरु)

केन्द्र सरकार सार्वजनिक उद्यमों के विनिवेश की अंधी नीति पर चलने के बजाय इनके आधुनिकीकरण और विस्तार के लिए कृत संकल्प है।

डॉ. मनमोहन सिंह
(प्रधानमंत्री)

मातृभूमि पर अपनी जान न्योछावर करने वाले शहीदों की देश में पूजा होनी चाहिए। जो देश शहीद होने वाले अपने जवानों को भुला देता है वह देश कभी तरक्की नहीं कर सकता।

शिवराज सिंह चौहान
(मुख्यमंत्री म.प्र.)

सिंगूर के यक्ष प्रश्न

सिंगूर आदोलन आज देश में किसान आंदोलन का प्रतीक बन गया है। सेज के विरोध में पश्चिम बंगाल में सिंगूर से उठी किसान संघर्ष की लपटें नन्दीग्राम तक पहुंच चुकी हैं जहाँ सेज के विरोध में संघर्ष में सात किसानों की मौत हो गई है। मुद्दा सिंगूर में एक हजार एकड़ जमीन का सरकारी अधिग्रहण के बाद टाटा कंपनी को सौंपने का नहीं है, अपितु यह देश में विशेष आर्थिक क्षेत्र (सेज) के नाम पर लाखों एकड़ किसानों की जमीन हड़पने और उसे बेदखल करने वाले षड्यंत्र से जुड़ा है। दुर्भाग्यवश केन्द्र सरकार की नीतियां और विभिन्न राज्य सरकारें इसमें दलाल की भूमिका निभा रही हैं। सिंगूर आंदोलन ने देश में किसान संघर्ष को एक नई दिशा दी है। इसका प्रमुख कारण निश्चित रूप से ममता बनर्जी का सिंगूर अधिग्रहण के खिलाफ लंबे उपवास पर बैठना रहा है। ममता बनर्जी उग्र स्वभाव की निश्छल राजनेता हैं, पारदर्शिता उनका स्वभाव है और वर्तमान आंदोलन में उन्होंने संघर्ष के लिए पवित्र और भारतीय साधनों का उपयोग किया। यही कारण रहा कि ''वर्गा आंदोलन'' द्वारा जमीनों का हक किसानों को देनेवाली वामपंथी सरकार की तीस साल पुरानी और ठोस जमीन ममता के एक उपवास से हिलने लगी। अन्य दलों की बात जाने दें, स्वयं वामदलों के भीतर प्रखर वैचारिक मतभेद उभरकर सामने आए। प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति के हस्तक्षेप से भले ही ममता बनर्जी ने उपवास तोड़ लिया हो लेकिन सिंगूर से उठी आग की लपटों का ताप अन्य जगह भी दिखायी देना निश्चित है।

वैश्वीकरण के पन्द्रह वर्षों में भारत में जो आय एवं समृद्धि विषमता बढ़ी है उसमें पश्चिम बंगाल अत्यधिक प्रभावित हुआ। वैचारिक घरातल, जिस पर खड़े होकर वामपंथी सरकारों ने पश्चिम बंगाल को वैश्वीकरण के दुष्प्रभावों से बचाने एवं बदले में उनको हंसुआ और हथौड़ा'' के बल पर प्रगति का स्वप्न दिखाया था वह दुःस्वप्न साबित हुआ। तीस वर्ष तक कृषि एवं उद्योग दोनों में ह्रास के कारण प्रदेश में जनाक्रोश का उबाल चरम पर है। वामदलों के नए एवं अभिजात्य नेतृत्व से जमीनी कार्यकर्त्ता का मोहभंग हो रहा है। उन्हें उनकी कमीज अपनी धोती–बनियान से अधिक सफेद दिखाई दे रही है। आक्रोश की इसी आग को सिंगूर में ममता बनर्जी ने स्वर देने का कार्य किया है। राज्य से उठा यह स्वर पूरे देश का स्वर बनने को तैयार है। एसा नहीं है कि देश में अन्य स्थानों पर कृषि आंदोलन नहीं हो रहे, लेकिन वहां ममता बनर्जी जैसी नैतिकता की कमी है। देश में रिलायंस कंपनी ने सबसे पहले पंजाब में खुदरा व्यापार हेतु जमीन अधिग्रहण की घोषणा की। उस समय एक पूर्व प्रधानमंत्री पंजाब सरकार के विरोध में आंदोलन करने नहीं गए। लेकिन जब मुद्दा उत्तर प्रदेश का आया तो उन्होंने किसान आंदोलन का आगाज किया। दुर्भाग्यवश जिस समय सभी लोग ममता बनर्जी को सहयोग देने सिंगूर पहुंच रहे थे ठीक उसी समय वे पूर्व प्रधानमंत्री सिंगूर इसलिए गए ताकि ममता को समझा – बुझाकर उपवास खत्म करवाया जा सके।

निर्यात बढ़ाने के लिए विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की कवायद के पीछे जिस प्रकार भूमि का अधिग्रहण किया जाता है वह हमेशा विवाद का विषय रहा है। अधिग्रहण के बाद मुआवजा एवं विस्थापितों का पुनर्वास भी उचित ढंग से नहीं किया जाता है। सिंगूर में सरकार ने जिनके नाम जारी किए कि उन लोगों ने स्वेच्छा से जमीन सरकार को सौंपी है उन्हीं लोगों ने दूसरे दिन सरकार के वचन का खंडन जारी किया। ठीक इसी प्रकार सेज से अधिक मात्रा में रोजगार उपलब्ध कराने का दावा महज खोखली घोषणाएं हैं। अभी तक जितने भी सेज बने हैं वे अपेक्षित मात्रा में राजस्व का सहयोग सरकार को नहीं कर पाए हैं। उदारीकरण एवं विकास के नाम पर यदि गांव, गरीब एवं किसानों को इसी प्रकार विस्थापन, संघर्ष एवं मौत का प्रसाद मिलता रहा तो देश में सिंगूर–नंदीग्राम की श्रृंखला बनते देर नहीं होगी। सरकार चाहे कोई भी हो लेकिन इस प्रकार के निर्णय लेने से पूर्व सिंगूर से उठे यक्ष प्रश्नों के उत्तर देने आवश्यक हैं।

''चिंताएं'' जिसे नजर अंदाज किया गया

वर्ष 2007 के प्रथम सप्ताह में जब पूरी दुनियाँ नए वर्ष के उल्लास में मग्न थी, चिदम्बरम में परमाणु उर्जा आयोग के वर्तमान अध्यक्ष अनिल काकोदर उन चिंताओं को रेखांकित कर रहे थे जिसे अमरीकी राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षरित भारत अमरीकी नाभिकीय समझौते में नजर अंदाज किया गया है। काकोदर ने कहा कि हमें यह देखना है कि अमरीका के साथ संपन्न करार स्वदेशी परमाणु कार्यक्रम को प्रभावित न करे। स्पष्ट है कि काकोदर इस करार को स्वदेशी परमाणु योजना के लिए खतरे के रूप में देख रहे हैं। काकोदर एवं दूसरे वैज्ञानिक की चिंताएं देश की चिंता है जिसे यूंही खारिज नहीं किया जा सकता। उधर अमरीकी अवर सचिव निकोलास बर्न्स ने कहा है कि उन्होंने भारत को एक सहमति पत्र का मसौदा दिया है जिस पर भारत के रूख का इंतजार है। निकोलास का कथन संदेह उत्पन्न करता है। यह मसौदा क्या है और सरकार ने इसे अब तक उजागर क्यों नहीं किया? डॉ. मनमोहन सिंह जब भारतीय संसद में बुश द्वारा नाभिकीय समझौता पत्र पर हस्ताक्षर से पूर्व देश की प्रमुख चिंताओं का जब जबाव दे रहे थे तो लोगों ने उन पर विश्वास किया। लेकिन अमरीका के नाभिकीय समझौता दस्तावेज में प्रधानमंत्री की दस में से महज दो ढाई चिंताओं का ही समाधान किया गया। स्पष्ट है प्रधानमंत्री ने संसद में देश को जो आश्वासन दिया था उसकी बुश प्रशासन ने धज्जियाँ उड़ायी है। प्रधानमंत्री ने ''अप्रसार सुरक्षा प्रयास'' जो नए अमरीकी कानून में बाद में समाहित किया गया है, के बारे में स्वयं स्वीकार किया था कि यह द्विपक्षीय बातचीत में कहीं नहीं था। ज्ञातव्य हो कि इसका उद्देश्य भारत को वैधानिक रूप से परमाणु अप्रसार संधि के भीतर लाना है। भारत को नाभिकीय ईंधन की निरंतर आपूर्ति का प्रधानमंत्री का संसद को आश्वासन भी अमरीकी कानून ने सीमित कर दिया है। हमारी हालत ऐसी हो गई है कि अभी तक अपने परमाणु कार्यक्रम को अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु उर्जा आयोग की देखरेख में चलाने की मजबूरी थी। अब इसके अलावा हमें अमरीका के अतिरिक्त सुरक्षा मानकों को पालन करने की बाध्यता रहेगी। प्रधानमंत्री का देश को इस मुद्दे पर दिया गया आश्वासन भी एक सिरे से खारिज कर दिया गया। भविष्य में परमाणु बम विस्फोट, जांच एवं अस्त्र के रूप में इसके उपयोग का अधिकार भारत के पास रहेगा, यह आश्वासन भी प्रधानमंत्री ने देश को दिया था। लेकिन करार की धारा 106 स्पष्ट रूप से उपर्युक्त कथन को खारिज करती है। क्या देश को नाभिकीय मुद्दों पर ऐसे ही सहयोग और सहयोगी की तलाश थी? क्या यह द्विपक्षीय वार्ता में दूसरे की पीठ में छुरा घोंपना जैसा कार्य नहीं है? क्या हम अमरीका पर विश्वास कर सकते हैं जिसने पूरी दुनियां की आंख में धूल झोंककर इराक में महाविनाशक हथियार को नष्ट करने के नाम पर आक्रमण किया? जहां तक बहुचर्चित 123 समझौते की बात है तो वह समझौता भी अमरीका के हाथ में ऐसा हथियार है जिसका उपयोग वे हर उद्देश्य की प्राप्ति के लिए करते रहेंगे। चूंकि हमें परमाणु इंधन उनसे लेना है इसलिए उनकी बात माननी हमारी मजबूरी होगी। यदि भारत को इससे बाहर निकलना है तो हमें अपनी स्वदेशी शोध, ईंधन स्त्रोत एवं स्वदेशी ब्रीडर परियोजनाओं पर विशेष ध्यान देना होगा ताकि नाभिकीय सम्पन्नता के क्षेत्र में देश की संप्रभुता की रक्षा की जा सके।

किसानों को जमीन से बेदखल करती सरकार

सिंगूर में विरोध करते विस्थापित

सरकार जनता को बनाने और बसाने का कार्य करती है लेकिन सिंगूर में पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार ने किसानों और गरीबों को उजाड़ कर पूंजीपतियों को बसाने का कार्य किया है।

■ धनपत राम अग्रवाल

पश्चिम बंगाल के सिंगूर में किसानों की उपजाऊ जमीन वहाँ की सरकार द्वारा जबरन अधिगृहीत कर (टाटा) उद्योगपतियों को सौंपी गयी है। पं. बंगाल में हालांकि यह पहली घटना नहीं है। सलेम उद्यमियों को भी इसी प्रकार से जमीन उपलब्ध कराई गई। गरीब किसानों से जबरन जमीन छीनने की घटनाएं उस देश में हो रही हैं जहाँ कृषि उसकी आर्थिक व्यवस्था एवं विकास का आधार रही है। इस देश में दशकों तक जय जवान जय किसान का नारा बुलंद हुआ लेकिन उसके बदले आज जय पूँजीवाद जय पूँजीपति का नारा बुलंद हो रहा है। यह घटनाएं उस समय हो रही हैं जब भारतीय कृषि संकट में फँसी है, कृषि उत्पादता या तो स्थिर है या निरंतर कम हो रही है और देश खाद्यान्न की भीषण कमी से जूझ रहा है। किसानों की बढ़ती समस्याओं से बेखबर पश्चिम बंगाल की सरकार को अपने उस वचन की अधिक चिंता है, जिसे उसने टाटा कंपनी को सिंगूर में उद्योग लगाने हेतु दे रखा है।

पश्चिम बंगाल में हुगली जिले के अन्दर सिंगूर 20,000 आबादी वाली एक छोटी सी जगह है जो पिछले दिनों वहां की वामपंथी सरकार द्वारा टाटा कंपनी को उसकी छोटी लखटकिया कार बनाने हेतु बनने वाली फैक्ट्री के एवज में अधिग्रहण के कारण चर्चित हुई थी।

हुगली एवं दामोदर नदी समूहों के द्वारा बहाकर लायी गई उपजाऊ मिट्टी से सिंगूर की जमीन काफी उपजाऊ बनी रहती है। इस पर तीन फसल उपजाना वह भी बिना किसी अधिक लागत के आसान है। इसलिए इसे एक फसल के योग्य भूमि कहना एकदम गलत है। वहाँ धान, जूट, आलू, गोभी, कद्दू, बैंगन, ककड़ी आदि वार्षिक एवं सामयिक फसलों की भरपूर खेती होती है। दस से बारह प्रकार की फसलों का यहां वर्ष भर उत्पादन होता रहता है। यहाँ कपास, धान, आलू की गुणवत्ता उँचे दर्जे की होती है। यहाँ छोटे–बड़े कुल मिलाकर 27 नलकूप हैं जो यह साबित करता है कि सिंगूर की भूमि पूर्ण रूप से सिंचित व उपजाऊ है।

सिंगूर की अर्थव्यवस्था

कृषि सिंगूर की अर्थव्यवस्था की जान है। यहां की जमीन का मालिक एवं उस पर काम करने वाले लोगों की अधिकांश जनसंख्या दलित वर्गों से आती है, जो जीविका के लिए स्थानीय खेती पर ही निर्भर हैं। इसलिए यदि इनकी जमीन इनसे छीन ली गई तो इनका एवं इनके

यह सरासर कानून का उल्लंघन है क्योंकि सरकार किसी भी जमीन का अधिग्रहण तभी कर सकती है जब वह आम जनता के हित में हो। लेकिन सिंगूर में भूमि अधिग्रहण कर टाटा को सौंपना कानून का सरासर उल्लंघन है। सरकार ने वहां के किसानों को धमकाया एवं डराया भी ताकि भूमि अधिग्रहण का काम 31 अक्टूबर तक पूरा हो सके।

परिवारार का जीना असंभव हो जाएगा। स्पष्ट है कि सरकार के द्वारा इनकी जमीन अधिग्रहण कर लेने के बाद जीने का कोई आसरा नहीं देखने के कारण इन्होंने सरकारी निर्णय के विरुद्ध विद्रोह का विगूल फूँक दिया।

एक ओर सरकार दावा कर रही है कि सिंगूर के लोगों ने स्वेच्छा से अपनी जमीन सरकार को सौंपी है। जिसका प्रचार प्रसार मीडिया द्वारा भी किया गया। जबकि सच्चाई यह है कि अब तक केवल 27 प्रतिशत लोगों ने ही स्वेच्छा से जमीन सौंपने का निर्णय लिया था। इसके अतिरिक्त जिन्होंने जमीन दी है वह भी राज्य सरकार द्वारा जबरन डरा–धमकाकर अधिगृहीत की गई है।

गरीबों का दुश्मन

जहाँ तक पश्चिम बंगाल की वामदल सरकार का सवाल है तो वह पूंजीपतियों के पक्ष में जिद्द ठानकर आम आदमी के हितों के विरुद्ध निर्णय ले रही है। सिंगूर का विवादास्पद मुद्दा इसका एक उदाहरण मात्र है। जो वामपंथी सरकार भूमि सुधार की समर्थक मानी जाती थी, वही अब उपजाऊ जमीन से उसके मालिकों, कास्तकारों को बेदखल कर उस पर उद्योगपतियों को जबरन कब्जा दिलवा रही है। सिंगूर में महज 1000 करोड़ रुपए की लागत से कार फैक्ट्री बनाने हेतु सिंगूर की उपजाऊ जमीन टाटा को सौंपने का निर्णय इसकी एक कड़ी है। वामपंथी सरकार जो किसानों की हितैषी मानी जाती रही है एवं जिसने पूंजीपतियों का प्रवेश राज्य में निषेध करने हेतु कंटीले तार का घेरा बना रखा है वही सरकार किसानों से मुँह फेरकर पूंजीपतियों के स्वागत में लिए लाल कालीन विछा रही है। प्रश्न उठता है कि आखिर सिंगूर ही क्यों? जहाँ 5 प्रतिशत जमीन भी गैर उपजाऊ नहीं है। ठीक इसके नजदीक बाँकुड़ा, पुरुलिया, जैसे जिलों में लगभग 10–15 प्रतिशत जमीन बंजर है। आखिर वहाँ कार फैक्ट्री लगाने का निर्णय सरकार ने क्यों नहीं लिया। बाँकुड़ा एवं पुरुलिया के लोग इस उद्योग का और अधिक स्वागत करते, क्योंकि इसका वहाँ की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ता। यदि वहाँ उपलब्ध आधारभूत संरचना विकसित नहीं थी तो उसे उपलब्ध कराया जा सकता था।

सिंगूर की घटना से यह भी सवाल पैदा होता है कि क्यों सरकार विकास की ऐसी नीतियां बनाती है जिसकी हद में अनुपयोगी जमीन तो नहीं आती है लेकिन 68 करोड़ लोगों को जीविका उपलब्ध कराने वाली शस्यश्यामला जमीन इसकी जट में जाती है।

गैर कानूनी कदम

ठीक इसी बीच भूराजस्व विभाग ने 1894 के उपनिवेशकाल के भूमि अधिग्रहण कानून को निरस्त कर सिंगूर की 997 एकड़ की जमीन का अधिग्रहण कर लिया है ताकि इसे टाटा को सौंपा जा सके। यह जमीन गैर उपजाऊ बताकर खरीदी गई है और पश्चिम बंगाल उद्योग विकास निगम को हस्तांतरित कर दी गई है। ताकि वह इसे टाटा को सौंप सके। यह सरासर कानून का उल्लंधन है क्योंकि सरकार किसी भी जमीन का अधिग्रहण तभी कर सकती है जब वह आम जनता के हित में हो। लेकिन सिंगूर में भूमि अधिग्रहण कर टाटा को सौंपना कानून का सरासर उल्लंधन है।

जब जन दबाव बढ़ा तो सरकार ने भूमि के बदले मुआवजे के तौर पर बाजार की कीमतों का 52 प्रतिशत मूल्य भूस्वामियों को दिया। ताकि वे प्रसन्न होकर जमीन सरकार को सौंप दें। लेकिन यह प्रक्रिया इतनी आसान भी नहीं थी। सरकार ने वहां के किसानों को धमकाया एवं डराया भी ताकि भूमि अधिग्रहण का काम 31 अक्टूबर तक पूरा हो सके।

टाटा को सौगात

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि टाटा एवं पं. बंगाल के बीच भूमि अधिग्रहण एवं कार फैक्ट्री लगाने को लेकर जो बातचीत हुई है उसे गोपनीय रखा गया है। एक स्थानीय टेलीविजन के द्वारा इस बात का खुलासा किया गया कि 20 वर्ष के बाद 20 करोड़ मिलने के लोभ में सरकार को 140 करोड़ रुपए का वित्तीय घाटा उठाना पड़ेगा और यह वित्तीय भार राज्य के खजाने पर आएगा। टाटा को इस जमीन को खरीदने संबंधी जो भी खर्चा मसलन बॉड पेपर, टिकट आदि खरीद पर छूट दी गई। इसके अलावा, जल कर, बिजली कर आदि में भी छूट की सहमति व्यक्त की गई थी।

पश्चिम बंगाल सरकार की कैबिनेट ने जुलाई में राज्य में एसईजेड विकसित करने के उद्देश्य से कोलकाता की 100–150 कि.मी की सीमा के भीतर लगभग 4,3,180 एकड़ जमीन के अधिग्रहण का निर्णय लिया था। ये जमीन उत्तरी और दक्षिणी 24 परगना, पूर्वी

मिदनापुर, हुगली एवं वर्दमान जिला में केंद्रित है। इसी में से सिंगूर की 1000 एकड़ की जमीन टाटा को कार फैक्ट्री लगाने के लिए दी गई।

रोजगार का खोखला दावा

पश्चिम बंगाल के उद्योग मंत्री का यह दावा कि सिंगूर में उद्योग स्थापित होने के बाद रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, एकदम खोखला है। एक लाख रुपए की कार का लक्ष्य बाजार में जो अभी दुपहिया वाहनों के मालिक हैं उनको आकर्षित करने के लिए अपनी कार को कम मूल्य पर बेचना चाहते हैं। लेकिन एक लाख में कार बेचना तभी संभव होगा जब कंपनी को उचित मुनाफा मिले। मुनाफा हेतु जितने भी लागत साधन होंगे कंपनी द्वारा उसे कम किया जाएगा। स्पष्ट है कि अधिक लोगों को रोजगार देना कंपनी के उद्देश्य प्राप्ति एवं आर्थिक दृष्टि से असंभव है। इतना ही नहीं कम कीमत पर कार बनाने हेतु कंपनी ऐसी तकनीकी का प्रयोग करेगी जिसमें कम से कम मानव संसाधन की जरूरत पड़े। इस प्रकार की फैक्ट्री में जो कुछ रोजगार के अवसर होंगे वे उच्च तकनीकी संस्थानों में योग्य कर्मियों के लिए ही होंगे।

उद्योग मंत्री ने दूसरा तर्क यह दिया कि यदि टाटा कंपनी से प्रत्यक्ष तौर पर रोजगार के अवसर सृजित नहीं होते हैं तो सहायक उद्योगों में रोजगार मिलेंगे। लेकिन मंत्री महोदय ने यह नहीं बताया कि टाटा कंपनी की आवश्यकता के अनुसार कितने सहायक उद्योग लग पाएंगे और इनमें कितने लोगों को रोजगार मिल पाएगा। स्पष्ट है कि ये सभी घोषणाएं किसी तथ्य पर आधारित नहीं हैं अपितु डपोरशंखी बयानबाजी है।

टाटा द्वारा 1000 एकड़ जमीन की

सिंगूर की जमीन को कब्जा में लेता प्रशासन

लेकिन एक लाख में कार बेचना तभी संभव होगा जब कंपनी को उचित मुनाफा मिले। मुनाफा हेतु जितने भी लागत साधन होंगे कंपनी द्वारा उसे कम किया जाएगा। स्पष्ट है कि अधिक लोगों को रोजगार देना कंपनी के उद्देश्य प्राप्ति एवं आर्थिक दृष्टि से असंभव है। इतना ही नहीं कम कीमत पर कार बनाने हेतु कंपनी ऐसी तकनीकी का प्रयोग करेगी जिसमें कम से कम मानव संसाधन की जरूरत पड़े।

मांग भी कई सवाल पैदा करती है। उद्योगमंत्री ने कोलकाता में एक प्रेस भेंट में कहा कि गुडगाँव में एक कार कंपनी 1250 एकड़ क्षेत्रफल में लगी फैक्ट्री से तीन लाख कार का प्रतिवर्ष उत्पादन करता है। लेकिन यह कथन भी झूठा साबित हुआ। दरअसल गुड़गाँव स्थित होंडा की उक्त कंपनी के पास 250 एकड़ जमीन है एवं वह सालाना 6 लाख कार का निर्माण करती है।

अत्याचार की शुरूआत

संघर्ष की शुरूआत 25–26 दिसंबर की मध्यरात्रि को ही हो गई जब भूमि अधिग्रहण के खिलाफ स्थानीय लोगों ने सिंगूर प्रखंड विकास अधिकारी के समक्ष प्रदर्शन किया। प्रशासन ने उन पर डंडे बरसाए। उनसे कहा गया कि जो चेक उनको दिया जा रहा है वे उसे ले लें। लोगों ने इसका प्रतिरोध किया। देखते देखते स्थितियाँ नियंत्रण से बाहर होती गईं। समाचार सिंगूर से निकलकर राष्ट्रीय स्तर तक फैल गया। पश्चिम बंगाल के प्रमुख विपक्षी दल भी अपनी लाव लश्कर के साथ धरने में सम्मिलित हो गया। आधी रात के बाद पुलिसिया कहर शुरू हुआ। नशे में धुत पुलिस बल ने बच्चों, महिलाओं, वृद्धों को बेरहमी से पीटा तृणमूल कांग्रेस की प्रदेश अध्यक्षा एवं लोकसभा सांसद के साथ हाथापायी की गई। उनकी साड़ी फाड़ दी गई एवं उन्हें पुलिस गिरफ्तार कर कोलकाता ले आयी। तृणमूल कांगेस की राष्ट्रीय अध्यक्षा एवं सांसद ममता बैनर्जी ने आरोप लगाया कि 550 किसानों से उनकी सहमति के बिना सरकार ने उनकी जमीन हथिया ली है। दूसरी और सिंगूर में उद्योग लगेगा, इस समाचार का प्रचार होने से रातों रात सिंगूर की जमीन की कीमत कई गुणा बढ़ गई है। लोभ में आकर यदि किसान अपनी जमीन बेच देते हैं तो उनका एकमात्र जीवन का आधार समाप्त होने के बाद क्या उनकी हालत होंगी यह सोचना एवं बहस का विषय है।

सरकारी खरीद गलत

आम आदमी के हित सें जुड़ी रेल, सड़क, वायुपत्तन आदि बनाने हेतु सरकार आम आदमी को उचित मुआवजा देकर एवं बिना उसकी सहमति के भी उसकी

जमीन लेकर उस पर निर्माण कार्य करा सकती है। सरकार जमीन का अधिग्रहण कर लेती है और जमीन मालिक को उसका भुगतान कर दिया जाता है।

लेकिन सिंगूर में जो कुछ हुआ वह घोटाला है। वहाँ गरीब किसानों से जो जमीन सरकार ने अधिगृहीत की है उस पर सार्वजनिक कार्य नहीं होने वाला है। अपितु टाटा जैसी नामी कंपनियों का लाभ कमाने वाली फैक्ट्री लगने वाली है। दुर्भाग्यवश गरीब किसानों से जमीन लेने का कार्य सरकार बड़ी तत्परता से निभा रही है। लेकिन ममता बनर्जी के प्रबल प्रतिरोध एवं उभरते जनाक्रोश के कारण सरकार का मंसूबा पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है। दरअसल कोलकाता में बुद्धदेव भट्टाचार्य के नेतृत्व में चल रही वामपंथी सरकार पिछले वर्षों में तथाकथित सुधारवादी चेहरा अपनाने के पीछे अनेक घिनौने कार्य कर रही है।

वामपंथी बने राष्ट्रवादी

सिंगूर मुद्दे पर उभरे प्रबल जनाक्रोश ने वामपंथी को भी राष्ट्रवादी बनने को बाध्य कर दिया है। मेधा पाटेकर, महाश्वेता देवी एवं अंरुधती राय जैसे वामपंथियों के समर्थकों ने भी सिंगूर विरोध में ममता बनर्जी का साथ दिया है। मेधा पाटेकर जो वामपंथियों के साथ विभिन्न मुद्दों पर प्रतिरोध एवं आंदोलन कर चुकी है, ने भी बुद्धदेव भट्टाचार्य की जमकर खिंचाई की। नक्सली आंदोलन को सैद्धांतिक मंजूरी देनेवाली प्रख्यात लेखिका महाश्वेता देवी ने भी इसका प्रबल विरोध किया। बूकर पुरस्कार से सम्मानित अरुंधती राय ने भी इन लोगों का साथ दिया। दरअसल सिंगूर का मुद्दा राष्ट्र के किसान आंदोलन का प्रतीक बन चुका है। इसलिए भाजपा के अध्यक्ष राजनाथ सिंह, एन डी ए के संयोजक जॉर्ज फर्नांडीज के साथ अब वामपंथी समर्थक भी ममता बनर्जी के साथ किसानों की लड़ाई लड़ रहे हैं।

धोखाधड़ी की लंबी परंपरा

सिंगूर की घटना पहला उदाहरण नहीं है जिसमें पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार ने घोटाले को जन्म दिया है। दरअसल इन राज्यों में धोखाधड़ी की लंबी परम्परा रही है। जब वामपंथी सत्ता में नहीं थे तो सुंदरवन में लोगों को बसाने के विरोधी थे, लेकिन सत्ता में आते ही इनका सुर बदल गया। औद्योगीकरण को लेकर भी इनका यही रवैया रहा है। दरअसल वामपंथियों का आजकल नारा हो गया है, कि जमीन किसानों की नहीं, टाटा की है। पश्चिम बंगाल के औद्योगीकरण से किसी भी विचारधारा से जुड़े लोगों को परहेज नहीं हो सकता है। लेकिन औद्योगीकरण को जिस कीमत पर पं. बंगाल सरकार प्रोत्साहित कर रही है वह सरासर गलत है। इस पूरे प्रकरण में बुद्धदेव भट्टाचार्य की खासी किरकरी हुई है। ममता बनर्जी ने जिस ऊर्जा एवं योजना के साथ प्रतिरोध की शुरूआत की उसने पूरे राष्ट्र का ध्यान अपनी ओर खींचा।

> *सिंगूर में जो कुछ हुआ वह घोटाला है। वहाँ गरीब किसानों से जो जमीन सरकार ने अधिगृहीत की है उस पर सार्वजनिक कार्य नहीं होने वाला है। अपितु टाटा जैसी नामी कंपनियों का लाभ कमाने वाली फैक्ट्री लगने वाली है। दुर्भाग्यवश गरीब किसानों से जमीन लेने का कार्य सरकार बड़ी तत्परता से निभा रही है। लेकिन ममता बनर्जी के प्रबल प्रतिरोध एवं उभरते जनाक्रोश के कारण सरकार का मंसूबा पूरा होता दिखाई नहीं दे रहा है। दरअसल कोलकाता में बुद्धदेव भट्टाचार्य के नेतृत्व में चल रही वामपंथी सरकार पिछले वर्षों में तथाकथित सुधारवादी चेहरा अपनाने के पीछे अनेक घिनौने कार्य कर रही है।*

एक मोटे अनुमान के अनुसार लगभग 65,000 औद्योगिक इकाइयाँ पिछले तीस वर्ष में वामपंथी सरकार के काल में या तो बंद हुई या रुग्ण हो गई। इनकी बंदी के पीछे प्रमुख कारण वामपंथी श्रमिक संगठनों का अनैतिक हड़ताल एवं बंद रहा। 1960 में जो पं. बंगाल सबसे अधिक औद्योगिक सघनता वाला क्षेत्र था, वह वामपंथी शासनकाल के दौरान खिसक कर आठवें स्थान पर चला गया है। वर्तमान मुख्यमंत्री के पांच वर्ष के शासन काल में केवल समझौता पत्र पर ही हस्ताक्षर हुए हैं और एक भी योजनाएं हकीकत में तब्दील नहीं हुईं। लोगों ने बी. भट्टाचार्य को ''एम ओ यू दादा'' कहना शुरू कर दिया है। 2001–06 में राज्य के औद्योगिक हालात में थोड़ा भी सुधार दिखाई नहीं दिया। उल्टे वामपंथी श्रमिक संगठनों द्वारा आयोजित हड़ताल, बंद एवं घेराव से उद्योगों में 276 लाख मानव दिवस की हानि 6000 कार्यकारी इकाईयों में हुई।

हालात बिगड़ी

2 दिसम्बर की रात को सरकार ने जब पुलिस के द्वारा जबरन अधिग्रहण हेतु दबाव बढ़ाया तो आक्रोश का उबाल फूट पड़ा। मुख्यमंत्री ने कहा कि हम टाटा को क्या जबाव देंगे? लेकिन आम आदमी और गरीब किसानों को पुलिस लाठी डंडे से पीट रही थी। अंततः ममता बनर्जी आमरण उपवास पर बैठ गई। उनके बैठते ही पूरे देश की नजर सिंगूर पर टिक गई। वामपंथी सरकार के ऊपर एवं बाहर से दबाव बढ़ने लगा। अंततः 25वें दिन प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के हस्तक्षेप से ममता बनर्जी ने अपना उपवास समाप्त

किया।

खाद्य सुरक्षा को खतरा

जब प्रधानमंत्री एवं राष्ट्रपति ने कहा कि देश को द्वितीय हरित क्रांति की जरूरत है तो पश्चिम बंगाल ने भी उनके सुर में सुर मिलाया। लेकिन 1.5 लाख एकड़ जमीन उद्योगों के लिए सुरक्षित रखने के बाद खाद्य सुरक्षा योजना किस आधार पर पूरी की जाएगी यह कठिन प्रश्न है? अगर सालाना 2 लाख टन चावल के उत्पादन में कमी होती है तो पूरे राज्य में खाद्यान्न का अभाव हो जाएगा। वर्ष 2004–05 में राज्य ने 152 लाख टन चावल का उत्पादन किया था जो कि देश के कुल उत्पादन का पांचवां हिस्सा है। पश्चिम बंगाल का कुल क्षेत्रफल 219.13 लाख एकड़ है जिसमें 219.13 लाख एकड़ क्षेत्र पर (60 प्रतिशत) मौसमी खेती होती है। केवल 7.76 लाख एकड़ ही 9 महीनों के लिए खाली रहता है। बाकी पर दो फसलें मोटे तौर पर उगा ली जाती है।

स्पष्ट है उपलब्ध जमीन पर विकास का दबाव बढ़ता जा रहा है और सरकार खतरों से अनभिज्ञ निर्णय लेती जा रही है। राज्य पर प्रकाशित एक रपट के अनुसार यह राज्य 'भूमि संक्रमित राज्य' हो रहा है एवं यदि 1.25 लाख जमीन का अधिग्रहण उद्योगों की स्थापना के लिए किया जाता है तो स्थितियां और भीषण हो जाएंगी। विपक्षी दल द्वारा, भूअधिग्रहण पर लगातार मांग की जा रही है कि सरकार श्वेत पत्र जारी करे। लेकिन सरकार आनाकानी कर रही है।

किसानों की दुर्दशा

पश्चिम बंगाल के आधे से अधिक किसान ऋणग्रस्त हैं। औसतन प्रत्येक किसान परिवार 5,237 रुपए वार्षिक ऋण से लदा है। उसमें भी अधिकांश के पास जोत भूमि का आकार एक एकड़ या उससे कम है। यदि इस पर भी दबाव उत्पन्न हुआ तो उनकी ऋणग्रस्तता बढ़ती जाएगी और बेसहारा होकर उन्हें खेती छोड़कर भूमिहीन श्रमिक बनना होगा।

राज्य की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है जो राज्य के सकल घरेलू उत्पाद का 25 प्रतिशत हिस्सा है। स्पष्ट है सरकार द्वारा यदि कृषि एवं किसानों के हितों की उपेक्षा की जाती है तो पश्चिम बंगाल का विकास अवरुद्ध हो जाएगा।

गलत निर्णय

सिंगूर की घटना में यह सुनिश्चित करना निहायत जरूरी है कि किसानों के जीवन एवं उसकी जीविका के हरेक पहलू की रक्षा की जाए। क्योंकि खेती ही जीविका का आधार होने के कारण इसके बहुआयामी दुष्परिणाम किसानों के परिवारों के उपर हो सकते हैं। स्पष्ट है कि सिंगूर का एकमात्र यह निर्णय भले ही बुद्धदेव भट्टाचार्य की सरकार को उदारवादी मुखौटा पहना दे लेकिन वामपंथी सरकार का परंपरागत वोट बैंक का सरकार से मोहभंग होना अवश्यंभावी है। इतना ही नहीं जहां एक ओर नेतृत्व एवं कार्यकर्ता के बीच दूरी बढ़ेगी तो दूसरी ओर आपसी कलह एवं मतभेद जो उजागर हुए हैं, वे भी बढ़ेगें।

इसलिए विरोधियों को प्रतिक्रियावादी कहकर मुख्यमंत्री उनके तर्कों को खारिज नहीं कर सकते हैं। बंगाल को ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता है, जो सिंगूर की घटना से जुड़े हर पहलू को उचित दिशा दे सके। जमीन से जुड़े मसलों को अहमियत देते हुए उसका उद्देश्यपरक समाधान ही सिंगूर की समस्या का हल हो सकता है। लेकिन बुद्धदेव भट्टाचार्य के वर्तमान रूख से भविष्य में स्थितियां विषम होने की संभावना है। ❖

सिंगूर में लगी आग की लपटें नंदीग्राम पहुंची

7 किसान मरे, 25 घायल

भूमि अधिग्रहण को लेकर सिंगूर में लगी आग की लपटें अब नंदीग्राम तक पहुंच गई हैं। सिंगूर की तरह सेज के नाम पर नंदीग्राम में इंडोनेशिया के सलीम ग्रुप को जमीन देने के विरोध में उतरे किसानों पर जमकर गोलीबाजी की गई, जिसमें 7 किसानों की ठौर मौत होने के बाद 25 से अधिक लोगों के घायल होने की खबर है। इस घटना के बाद नंदीग्राम में मौत का सा सन्नाटा छाया है, जिसके चलते वहां किसी के घर में चूल्हा तक नहीं जला। इतना ही नहीं इस घटना के ठीक बाद नंदीग्राम से सटे खिजूड़ी नाले से तीन सिर कटी लाशें मिलने से पूरे क्षेत्र में भय और दहशह का माहौल है।

किसानों की इस तरह हत्या के लिए माकपा का असली चेहरा उजागर हुआ है और वह कटघरे में खड़ी हो गई है। नंदीग्राम की चार पंचायतों – सोनाचुआ, कातियाचरणपुर, केंदेमारी और मोहम्मदपुर के किसानों का आरोप है कि माकपा के कैडरों ने इलाके में अनवरत बम वर्षा और फायरिंग कर निर्दोष किसानों की हत्या की है। किसानों की इस तरह से हत्या पूर्व नियोजित है, क्योंकि माकपा की केन्द्रीय कमेटी के सदस्य और किसान नेता विनय कोन्नार ने स्पष्ट चेतावनी दी थी कि वे नंदीग्राम की चार ग्राम पंचायतों को घेर कर विरोध का सबक सिखाएंगे, इस चेतावनी के कुछ घंटों बाद ही हिंसा हुई।

प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार माकपा कार्यकर्ताओं ने सुनियोजित साजिश के तहत बाकायदा शिविर लगाकर इस नृशंश हत्याकांड को अंजाम दिया है। इस घटना की जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई है, और इसके विरोध में तृणमूल, भाजपा सहित कई रोजनैतिक दल व स्वयंसेवी संगठन आगे आए हैं। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य अब घड़ियाली आंसू बहा रहे हैं, और पहले आग लगाकर अब पानी डालने की बात करते हैं। बुद्धदेव भट्टाचार्य ने यह कहकर कि सरकार नंदीग्राम की समस्या का समाधान करेगी, इस घटना पर लीपापोती करने की कोशिश की है, लेकिन किसान इससे संतुष्ट नहीं हैं और वे अब आर–पार की लड़ाई के मूड में हैं, अब देखना यह है कि किसानों की हितैषी होने का दम भरने वाली कांग्रेसनीत यूपीए सरकार आखिर क्या कदम उठाती हैं।

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की मौकापरस्ती

सीपीएम के पास हर कठिन सवाल का जवाब चीन की अर्थव्यवस्था है। मार्क्सवाद अथवा माओवाद से चाहे जितना भटकाव क्यों न हो जाए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का मुखौटा ओढ़कर पार्टी अपना आसानी से बचाव कर लेती है।

■ **राकेश सिन्हा***

टाटा–बिरला की यह सरकार नहीं चलेगी, नहीं चलेगी, यह राजनीतिक नारा भारत के कम्युनिस्टों के लिए तब तक प्रिय था जब तक वे राजनीति में हाशिए पर थे। जैसे ही वे राजनीतिक सत्ता की धुरी बने, उन्होंने इन्हीं पूंजीपतियों को गले ही नहीं लगाया, बल्कि उनकी गोद में बैठकर मार्क्सवाद का जाप कर रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि पार्टी अपने दस्तावेजों में तो उन्हीं परंपरागत शब्दावलियों, मुहावरों, मार्क्सवादी भाषा एवं उद्देश्यों, कथित क्रांतिकारी लफ्जों का प्रयोग कर रही है पर व्यवहार में ठीक इसके विपरीत चल रही है। इस दोमुंहेपन, दोहरेपन एवं दिखावटीपन का ताजा उदाहरण सिंगूर की घटना है।

टाटा, बिरला या किसी औद्योगिक घराने को पूंजी निवेश के लिए आमंत्रित करना न ही नीति, न ही व्यवहार में कोई अपराध है। हां, मार्क्सवादी जरूर मानते रहे हैं कि भारतीय सरकार इन पूंजीपतियों के दबाव एव उनके हित में कार्य कर रही है। इसलिए वे उपरोक्त नारे के द्वारा बताना चाहते थे कि जब वे सत्ता की धुरी बनेंगे 'तब यह राज्य इन 'बुर्जुआ' प्रभावों से मुक्त होगा। लेकिन हो रहा है इसका उलटा। पश्चिम बंगाल में दूसरी बार सत्ता की कमान संभालते ही बुद्धदेव भट्टाचार्य ने टाटा को एक हजार एकड़ जमीन तोहफे के रूप में भेंट की। यह मुद्दा पश्चिम बंगाल के औद्योगिकीकरण के मुद्दे तक सीमित नहीं है। जो भूमि टाटा को दी गई है कृषि–योग्य उपजाऊ भूमि है। यह टाटा की पसंद का निर्णय है। फैसला आनन–फानन में किया गया। निर्णय के बाद अधिनायकवादी तरीके से बुद्धदेव भट्टाचार्य विपक्ष को ललकारते रहे। भारत में किसी औद्योगिक घराने के पक्ष में आज तक कोई राजनीतिक पार्टी इतनी खुलकर खड़ी नहीं हुई है। यहां तक कि स्वतंत्र पार्टी भी देशी दुल्हन की तरह पूंजीपतियों का पक्ष शर्माते हुए लेती थी। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तो इस लाज–शर्म को भी ताक पर रखकर काम कर रही है।

सिंगूर में प्रदर्शनकारियों से मुठभेड़

सीपीएम ने अपनी ही पार्टी दस्तावेज का क्यों और किस बाध्यता में उल्लंधन किया है, यह तो आनेवाला समय ही बताएगा। इस घटना से कुछ ही महीने पूर्व अप्रैल 2006 में पार्टी ने 'वाम मोर्चे की सरकार का वैकल्पिक दृष्टिकोण' नामक जो दस्तावेज जारी किया था, उसमें कहा गया कि 'महत्त्व की बात यह है कि सरकार ने निर्णय लिया है कि उद्योगों के विस्तार के लिए उपजाऊ भूमि का अधिग्रहण नहीं किया जाएगा। क्या सीपीएम और वाम मोर्चे की सरकार को, सिंगूर की जमीन उपजाऊ है या नहीं मालूम नहीं है?

पार्टी के ही दस्तावेज के अनुसार राज्य की कुल उपजाऊ जमीन का 72 प्रतिशत सीमांत एवं छोटे किसानों के हाथों में है। भूमि–सुधार का पिछले तीन दशकों से डफली बजाते पार्टी कभी नहीं थकी। आज उसके पास इसका क्या जवाब है कि सिंगूर में भूमि अधिग्रहण इन्हीं सीमांत एवं छोटे किसानों से किया गया है। उनका मालिकाना हक छीनकर खूबसूरत मुआवजा क्या इसका मार्क्सवादी समाधान है?

सिर्फ सिंगूर की अकेली घटना होती तो अपवाद मानकर पार्टी को माफ किया जा सकता था। परन्तु पार्टी विरोधाभासों, वैचारिक उलझन, नेतृत्व की लड़ाई और मौकापरस्ती के जिस दौर से गुजर रही है, उसने न सिर्फ पार्टी के दक्षिणपंथी रुझान को उजागर किया है, बल्कि पार्टी

* लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं।

के ऊपर सैद्धांतिक प्रश्न पर विभाजन एवं बिखराव का भी खतरा उत्पन्न कर दिया है। केरल की इकाई अच्युतानंदन एवं विजयन के दो घोर विरोधी शिवरों में बंटी हुई है। केरल में मार्क्सवादी सिद्धांतों की बात करने वाले पार्टी विरोधी करार दिए जा रहे हैं।

दो–चार लोगों पर सख्त कार्रवाई से वैचारिक प्रतिबद्धता रखने वाले पार्टी कार्यकर्ताओं को चुप कर रखा गया है। पी सुंदरम, वीपी वासुदेवन, डॉ. आजाद इसके शिकार हुए हैं। पश्चिम बंगाल में दूसरी बार मुख्यमंत्री की कमान संभालते ही बुद्धदेव भट्टाचार्य ने इंडोनेशिया के अखबार 'जकार्ता पोस्ट' को साक्षात्कार देकर अपनी पार्टी को जो संदेश दिया उसे केंद्रीय नेतृत्व आसानी से भले पचा गया परंतु जिन कार्यकर्ताओं को मार्क्सवाद रटाया गया है, वे कब तक चुप रहेंगे? भट्टाचार्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि 'पुरानी सोच' और 'पुराना सिद्धांत' अब काम नहीं करेगा। वे वहां से सलेम ग्रुप को कलकता में निवेश करने के लिए बुला रहे हैं। इसका संबंध सुहार्तो सरकार से था, जिसकी निंदा सीपीएम एक नहीं, हजार बार कर चुकी है। यह अधिनायकवादी शासन हजारों लोगों के कत्लेआम के लिए जिम्मेदार है। सलेम ग्रुप इसी अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में फला–फूला था। अखिर पार्टी के पास इसका क्या जबाब है? पार्टी ने जो औचित्य बताया है, वह विचित्र है। सलेम ग्रुप चीन में निवेश कर रहा है, तो भारत में क्यों नहीं?

सीपीएम के पास हर कठिन सवाल का जवाब चीन की अर्थव्यवस्था है। मार्क्सवाद अथवा माओवाद से चाहे जितना भटकाव क्यों न हो जाए चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का मुखौटा ओढ़कर पार्टी अपना आसानी से बचाव कर लेती है। चीन की

'पुरानी सोच' और 'पुराना सिद्धांत' अब काम नहीं करेगा। वे वहां से सलेम ग्रुप को कलकता में निवेश करने के लिए बुला रहे हैं। इसका संबंध सुहार्तो सरकार से था, जिसकी निंदा सीपीएम एक नहीं, हजार बार कर चुकी है। यह अधिनायकवादी शासन हजारों लोगों के कत्लेआम के लिए जिम्मेदार है। सलेम ग्रुप इसी अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में फला-फूला था। अखिर पार्टी के पास इसका क्या जबाब है?

अर्थव्यवस्था में हुआ सकारात्मक परिवर्तन मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का इसके प्रति झुकाव का कारण नहीं है। वस्तुतः इसका जन्म ही चीन कम्युनिस्ट पार्टी का भारत के कम्युनिस्ट पार्टी के साथ अवैध संबंध के परिणाम स्वरूप हुआ है। यह अतिशयोक्ति नहीं ऐतिहासिक सत्य है। 1960 से लेकर 1964 तक कम्युनिस्ट पार्टी के दस्तावेज उठाकर देखने से सत्य का स्पष्ट ज्ञान होता है। यह काल भारत–चीन सीमा विवाद का था।

1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया था। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का बहुमत नेहरू सरकार के साथ था तो अल्पमत (जिसने बाद में सीपीएम बनाया) माओ (चीन की सरकार) के साथ था। यह अल्पमत इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि चीन ने भारत की भूमि पर कब्जा किया है अथवा आक्रमण किया है। नेहरू सरकार ने इन्हें चीन का एजेंट, राष्ट्र विरोधी घोषित कर जेल में बंद कर दिया था। इसमें सीपीएम के प्रायः सभी संस्थापक नेता शामिल थे। दो–चार दिनों तक नहीं, तीन–चार वर्षों तक इन्हें जेल में रखा गया। 1 जनवरी, 1965 को गुलजारी लाल नंदा जो भारत सरकार में गृहमंत्री थे, ने आकाशवाणी पर जो बात अपने विशेष प्रसारण में कही वह मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ऊपर लगी ऐसी कालिख है जो हजारों प्रायश्चित करने पर भी साफ नहीं हो सकती है। उन्होंने कहा था कि इन नेताओं को चीन के पक्ष में प्रचार करने, भारत की सुरक्षा जानकारियों की जासूसी करने और चीन की सरकार का समर्थन करने के अपराध में जेल में रखा गया है। 24 अक्टूबर 1962 को जब भारतीय सैनिक चीनी आक्रमणकारियों के हाथों शहीद हो रहे थे, तब पश्चिम बंगाल में पार्टी ने सार्वजनिक सभा में भारत सरकार को उलाहना देते हुए कहा था कि 'चीन एक समाजवादी देश है अतः वह भारत का एक इंच भी कब्जा नहीं कर सकता है।' देश के सभी अखबारों ने सीपीएम के राष्ट्रविरोधी कार्यों की भत्सर्ना की थी। तब भी सीपीएम का कहना था कि 'जनहित में वह कार्य कर रही हैं।' चीन के प्रति इसकी प्रतिबद्धता आज भी दिखाई पड़ रही है। सोवियत संघ के अंत के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी भले ही अनाथ महसूस कर रही हो, लेकिन सीपीएम तो चीन के संरक्षण में मार्क्सवादी साए के भीतर पूंजीवाद का भोग कर रही है। ❖

सामाजिक सुरक्षा का गहराता संकट

परिवार एवं सामुदायिक संबंध भारत में बुजुर्गों की सामाजिक सुरक्षा का परंपरागत एवं महत्त्वपूर्ण आधार रहा है। लेकिन संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण संकट और अधिक गहराया है।

■ **आर. वैद्यनाथन ***

वर्ष 2004–05 में देश की जनसंख्या एक अरब 90 लाख थी, जिसमें पुरुषों की जीवन प्रत्याशा 64 वर्ष और महिलाओं की 67 वर्ष थी। आर्थिक सर्वेक्षण 2005–06 के अनुसार जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि की दर 1.93 प्रतिशत रही।

यदि 1991 की तुलना में 2016 में जनसंख्या का अनुमान लगाएं तो कुल जनसंख्या में 49 प्रतिशत की वृद्धि होगी। इनमें वरिष्ठ नागरिकों की संख्या (65 वर्ष से अधिक) 7.8 करोड़ के लगभग हो जाएगी। 2026 तक इन वरिष्ठ नागरिकों का देश की कुल जनसंख्या में हिस्सा बढ़कर 8.1 प्रतिशत (11.6 करोड़) होने का अनुमान है।

यदि जीवन प्रत्याशा में सुधार की यही गति रही तो जो लोग 60 वर्ष उम्र के हैं वे 75 वर्ष तक जीवित रह सकते हैं। अर्थात् एक कार्य करने वाला व्यक्ति नौकरी से 60 वर्ष में अवकाश प्राप्त करने के बाद भी 15 वर्ष तक जीवित रहेगा, जिस हेतु उसे अतिरिक्त संसाधनों की जरूरत पड़ेगी। साथ में दी गई सारणी जो महानिदेशक पंजीयक एवं वित्त मंत्रालय द्वारा जारी की गई है, पर यदि नजर डालें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि 65 वर्ष के ऊपर के लोगों की संख्या 2006 में जो कुल जनसंख्या का 5 प्रतिशत है वह 2026 में बढ़कर 8 प्रतिशत के स्तर पर चला जाएगा। लेकिन 2001 के जनगणना का यदि अवलोकन करते हैं तो पाते हैं कि 2001 में ही 65 वर्ष से उपर के लोगों की संख्या 4 प्रतिशत (4.2 करोड़) हो चुकी है। इससे यह स्पष्ट है कि वर्तमान में जो लोग वरिष्ठता की श्रेणी में आ चुके हैं उनके लिए अपेक्षित सामाजिक सुरक्षा की चिंता की जानी चाहिए।

2005 में सेवा क्षेत्र, जिसमें विनिर्माण, परिवहन, संचार, व्यापार, शिक्षा, वित्त, बीमा, संपदा, सामुदायिक, सामाजिक एवं निजी क्षेत्र आता है, का कुल अर्थव्यवस्था में हिस्सा 60 प्रतिशत है। तात्पर्य यह कि यह क्षेत्र देश की अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका अदा कर रहा है। ऊपर वर्णित सेवा क्षेत्र से जुड़े अधिकांश मुद्दे स्वरोजगार की श्रेणी में आते हैं। अर्थात् इसमें शासन की उपस्थिति अपेक्षाकृत कम रहती है। स्वरोजगार की प्रमुखता वाला क्षेत्र होने के कारण इसमें जुड़े लोगों द्वारा सामाजिक सुरक्षा में निवेश न कर पाने के कारण वे इस सुविधा से वंचित हैं।

2001 के आँकड़ों के अनुसार कुल श्रमिकों की संख्या 40.3 करोड़ है, जिसमें 31.1 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में एवं 9.2 करोड़ शहरी श्रमिक हैं। 40.3 करोड़ में 16.8 करोड़ गैर कृषि श्रमिक हैं जिनमें लगभग 1.6 करोड़ औद्योगिक श्रमिक भी शामिल हैं। इस प्रकार गैर कृषि कार्य एवं गैर औद्योगिक कार्य में कार्यरत श्रमिकों में अधिकांश को किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था उपलब्ध नहीं है। आज सामाजिक सुरक्षा की जिनको थोड़ी बहुत सुविधा उपलब्ध है वह भी अपेक्षित मात्रा में नहीं है।

परंपरा एवं परिवर्तन

संयुक्त परिवार व्यवस्था में लगातार हो रही टूट के कारण वरिष्ठ नागरिकों के जीवन यापन संबंधी कई समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। निरंतर बढ़ती इस समस्या का सामाधान नीति नियामकों को ढूँढ़ना ही होगा। भारतीय परंपरा में बड़े बुजुर्गों को सम्मान देना गर्व का विषय रहा है। प्राचीन समय में धनी व्यापारी एवं अन्य दाता लोग बड़े–बुजुर्गों के लिए आश्रय स्थल बनाते थे, जहाँ उनकी देखभाल की

*** लेखक : आई.आई.एम. बंगलूर में वित्त एवं नियंत्रण के प्राचार्य हैं**

संयुक्त परिवार व्यवस्था में लगातार हो रही टूट के कारण वरिष्ठ नागरिकों के जीवन यापन संबंधी कई समस्याएं उठ खड़ी हुई हैं। निरंतर बढ़ती इस समस्या का सामाधान नीति नियामकों को ढूँढ़ना ही होगा। भारतीय परंपरा में बड़े बुजुर्गों को सम्मान देना गर्व का विषय रहा है। प्राचीन समय में धनी व्यापारी एवं अन्य दाता लोग बड़े-बुजुर्गों के लिए आश्रय स्थल बनाते थे, जहाँ उनकी देखभाल की उचित व्यवस्था होती थी।

उचित व्यवस्था होती थी। यह स्थान आमतौर पर कहीं धार्मिक स्थल के आसपास होता था जहाँ ये लोग जीवन के अंतिम समय में धार्मिक पूजा पाठ करते हुए अपना समय बिताते थे।

भारतीय दर्शन में भी मनुष्य के संपूर्ण जीवन काल को परंपरागत रूप से चार भागों में विभाजित किया गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास। नौकरी में भी 'सेवा अवकाश' की आयु मोटे तौर पर संन्यास की अवधारणा से ली गई है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी हमेशा संयुक्त परिवार एवं समुदाय की रही है। संयुक्त परिवार के विघटन से इनके उपर असुरक्षा का खतरा बढ़ा है। विश्व के कुल बुजुर्गों का आठवां हिस्सा भारत में रहता है। उसमें से अधिकांश लोग पेंशन की सुविधा से वंचित हैं और जीवन गुजर बसर करने के लिए या तो स्वयं के किसी जुगाड़ या अपने निकटतम रिस्तेदारों पर निर्भर रहते हैं। लेकिन वैश्वीकरण एवं लोगों का एक जगह से दूसरे जगह प्रवासन के कारण संयुक्त परिवार ह्रास की ओर अग्रसर है। शहरी क्षेत्रों में संयुक्त परिवार का विघटन तो और तेजी से हो रहा है। यह समाज एवं सरकार के ऊपर बढ़ती जिम्मेदारी है कि असुरक्षित होते वृद्ध समाज की देखभाल की चिंता करे। लेकिन वृद्धावस्था में स्वास्थ्य पर खर्चे में वृद्धि और एवं बढ़ती जीवन प्रत्याशा के कारण वृद्धजनों की देखभाल शासन व्यवस्था के तरीके से करना असंभव दिखाई देता है। इसलिए इस बात की आवश्यकता बढ़ गयी है कि वृद्धावस्था की आयी बाढ़ को प्रभावी तरीके से कैसे निपटा जाए। इस पर गंभीर चर्चा एवं निर्णय किया जाए। सरकारी योजनाओं के सामने भी यह एक गंभीर लेकिन प्रत्यक्ष सवाल है। यदि इसे समय पूर्व नहीं ठीक किया गया तो इसके भीषण सामाजिक–आर्थिक दुष्परिणाम समाज एवं राष्ट्र को भुगतने होंगे।

पेंशन वृद्धजनों में व्याप्त गरीबी को कम करने का एक माध्यम हो सकता है। अन्य तीन प्रमुख स्तंभ जो इसको मजबूत बना सकते हैं, इस प्रकार हैं – पहला, सार्वजनिक वित पोषित योजनाएं जो वृद्धजनों की सामाजिक सुरक्षा जमा पर पर्याप्त लाभ देती हैं। दूसरा, पेशागत योजनाएं जो उद्यमियों के द्वारा श्रमिकों को दी जाती हैं या फिर आवश्यक निजी पेंशन योजनाएं। तीसरी व्यवस्था यह हो सकती है कि सेवा अवकाश के बाद अतिरिक्त स्वैच्छिक सहयोग का भुगतान हो ताकि अवकाश के बाद भी वृद्धजनों की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। पहला सुझाव भारत जैसे विकासशील देशों के संदर्भ में बहुत सकारात्मक दिखाई नहीं देता है। क्योंकि भारत विश्व की सबसे बडी निजीकृत अर्थव्यवस्था है। दूसरा सुझाव अपेक्षाकृत अधिक क्षेत्र को अपने में समेटे हुए है, फिर भी इसके अंतर्गत स्वयं रोजगार प्राप्त लोग नहीं आ पाते हैं।

ठेका एवं असंगठित क्षेत्र के श्रमिक

तीसरे सुझाव के अंतर्गत असंगठित क्षेत्र के जितने भी श्रमिक हैं, वे आ सकते हैं। विश्व बैंक के द्वारा सुझाए गए इन तीनों सुझावों में सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव परिवार समर्थित सुरक्षा योजना का उल्लेख नहीं है जो भारत में सदियों से चला जा रहा है।

दरअसल परिवार आधारित सामाजिक

जनसंख्या विस्तार

(दस लाख में)

उम्र सीमा	2001	2006	2011	2016	2021	2026
कुल	1027	1114	1197	1275	1347	1411
15 वर्ष से कम	363	360	351	343	337	328
15–64 वर्ष	622	702	780	854	916	967
65 वर्ष से उपर	42	52	66	78	94	116

स्त्रोत – सारणी 10.7, आर्थिक सर्वेक्षण, 2005–06

सुरक्षा निरंतर ह्रास की ओर है और सरकार की सभी नीतियाँ इसे दिन–प्रतिदिन कमजोर बनाती जा रही है। सरकारी पेंशन योजना का लाभ केवल केन्द्र या राज्य सरकारों के कर्मचारियों को ही मिल पाता है। जबकि आवश्यक कटौती द्वारा सुरक्षा (ईपीएफ एवं ईपीएस) द्वारा केवल 4.1 करोड़ लोगों को ही लाभ मिल रहा है। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग 15 प्रतिशत कार्य करने वाली जनसंख्या को ही सामाजिक सुरक्षा का लाभ मिल पाता है। चूँकि देश में घरेलू बचत, एवं सोने में निवेश देश के कुल बचत का महत्त्वपूर्ण भाग है, इसलिए समाज अपनी व्यवस्था के अनुसार अपने वृद्धों की देखभाल कर पाने में सक्षम है।

सरकारी प्रयास

नातेदारी आधारित अपनी सामाजिक व्यवस्था का पश्चिमी अंग्रेजी पद्धति की नीति आधारित विकास से संघर्ष चल रहा है। सरकार सोच रही है कि एक ऐसा कानून बनाया जाए ताकि नई पीढ़ी अपने बुजुर्गों की देखभाल हेतु बाध्य हो सके। सरकार का यह प्रयास अपने आप में संकट की भीषणता को दर्शाता है। सरकार निश्चित होकर यह मानकर चल रही है कि हमारे बनाए गए कानून के बाद अदालतों द्वारा सभी समस्याओं का निदान हो जाएगा। यह निर्णय भविष्य में अनिष्टकारी साबित होगा। पश्चिमी उपभोग आधारित एवं व्यक्ति केन्द्रित विकास व्यवस्था अपने समाज में सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती है। पिछले वर्ष यूरोप में भारी संख्या में वृद्ध लोग मौत के शिकार हुए क्योंकि उनकी देखभाल करने वाले लोग छुट्टी मनाने चले गए थे। स्वीडन ने उन लोगों को कर में छूट दी है जो अपने परिवार में बुजुर्गों का भरण–पोषण करते हैं। भारत की विशाल एवं विविधतापूर्ण जनसंख्या को देखते हुए सरकारी सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने का दावा खोखला साबित हुआ है और आगे भी होगा। अच्छा होगा कि परिवार एवं समुदाय जैसी संस्थाओं को मजबूत बनाया जाए, ताकि वे अपने बड़े बुजुर्गों की उचित देखभाल कर सकें। वृद्धाश्रम की प्राचीन अवधारणा पश्चिमी देन नहीं है। यह पूर्ण रूप से भारतीय दर्शन के अनुकूल है।

सामाजिक पूंजी–''परिवार'' खासकर संयुक्त परिवार अभी भी भारतीय समाज व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था का मेरूदंड है। इसको पल्लवित एवं पुष्पित करना आज की आवश्यकता है। परिवार पश्चिमी देशों में शोषण का प्रतीक माना जाता है। और दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ इसकी नकल हो रही है। पश्चिमी देश ''नाभिकीय परिवार'' से ''प्रोटोन परिवार'' (माता या पिता) एवं आने वाले दिनों में ''मेसोन परिवार'' (माता पिता रहित) में परिवर्तित होने वाला है। वहाँ सामाजिक सुरक्षा का मुद्दा घिनौना रूप लेने वाला है। भारत को उस पथ पर चलने की जरूरत नहीं है। समाज वैज्ञानिक, विचारक एवं चिंतक उन तरीकों एवं रास्ते की खोज करें, जिससे संयुक्त परिवार की रक्षा हो, वह मजबूत बने ताकि वह समाज के बड़े–बूढ़ों की सभी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा का दायित्व अपने उपर खुशी–खुशी उठा सके। ❖

भारतीय मजदूर संघ सर्वोच्च श्रमिक संगठन

भारतीय मजदूर संघ देश में श्रमिक संगठनों की सदस्यता संख्या के आधार पर एक बार पुनः देश का सर्वोच्च श्रमिक संगठन घोषित किया गया है। जबकि वामपंथी श्रमिक संगठन एवं अन्य केंद्रीय श्रमिक संगठन सदस्यता की संख्या में भारतीय मजदूर संघ से काफी पीछे चल रहे हैं। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी राजनीतिक दौड़ में मार्कसवादी कम्युनिस्ट पार्टी से भले ही पिछड़ गई हो और राष्ट्रीय राजनीतिक दल के रूप में उसकी मान्यता भले ही खत्म होने के कगार पर हो मगर पहली बार उसने मजदूर यूनियनों के मोर्चे पर माकपा को पछाड़ दिया है।

श्रम मंत्रालय की हर दस साल बाद मजदूर यूनियनों की सदस्य संख्या के सत्यापन के लिए एक सर्वेक्षण किया जाता है। जल्दी ही प्रकाशित होने वाले इस सर्वेक्षण के मुताबिक इस बार भाकपा से जुड़ी मजदूर यूनियन आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) की सदस्य संख्या 33 लाख हो गई है जबकि पिछले सत्यापन सर्वेक्षण में उसकी तादाद केवल नौ लाख थी। पिछले दस साल में उसकी सदस्य तादाद में यह साढ़े तीन गुना की बढ़ोतरी सचमुच बड़ी चमत्कारिक है। दूसरी तरफ वाम मोर्चे में बड़े भाई का रोल अदा करने वाली माकपा से जुड़ी सीटू की सदस्य संख्या में बढ़ोतरी तो हुई मगर वह एटक की तुलना में काफी कम है। सीटू की तादाद 26 लाख हो गई है जबकि पहले वह 17 लाख थी। इस बढ़ोतरी के बावजूद वह एटक से पिछड़ ही रही है और तीसरे नंबर से पांचवें नंबर पर पहुंच गई है।

एटक के सीटू के मुकाबले आगे निकल जाने पर इसलिए भी अचरज जताया जा रहा है क्योंकि भाकपा एक राजनीतिक दल के तौर पर ह्रास की ओर ही बढ़ रही है। उसके पुराने प्रभाव क्षेत्र भी खत्म हो गए हैं। ऐसे में मजदूर मोर्चे पर उसकी सफलता पर भौंहे तनना स्वाभाविक है। मजदूर आंदोलन से जुड़ें कुछ लोग भाकपा की इस सफलता का श्रेय एटक के महासचिव गुरुदास दास गुप्ता को देते हैं।

वैसे उदारीकरण के इस मजदूर विरोधी दौर में मजदूर संगठनों की सदस्य संख्या में भारी इजाफा हुआ है। शायद अब मजदूर और कर्मचारियों को अपने हितों की रक्षा के लिए मजदूर यूनियनों को ज्यादा जरूरत महसूस हो रही है। पिछली बार की तरह इस बार भी अपनी साठ लाख सदस्य संख्या के साथ संघ परिवार से जुड़ा भारतीय मजदूर संघ पहले नंबर पर रहा। यह इस बात का परिचायक है कि भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक दत्तोपंत ठेंगड़ी के बाद आया नेतृत्व भी संगठन पर अपनी पकड़ बनाए हुए है और उसका विस्तार भी हो रहा है। **साभार : जनसत्ता**

दागियों से घिरे मनमोहन

राजनीति में अपराधीकरण के कारण आम लोगों का वर्तमान व्यवस्था एवं राजनीति से विश्वास लगभग उठ चुका है।

■ **निरंकार सिंह**

केन्द्रीय सरकार के मंत्री शिबू सोरेन का हत्या का दोषी पाया जाना एक ऐसी घटना है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती – यह हमारे संसदीय लोकतंत्र के पतन की पराकाष्ठा है जिसमें एक हत्यारा भी केन्द्रीय मंत्री बन जाता है। आज लोकसभा और विधानसभाओं में आपराधिक छवि के लोगों का चुनकर आना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। हालात यहाँ तक पहुँच गयी है कि देश की सबसे बड़ी आतंकवादी घटना के आरोपी अबू सलेम के उत्तर प्रदेश विधानसभा के चुनाव में उतरने के पोस्टर और बैनर लगाये जाते हैं, और कुछ लोग उसके चुनाव लड़ने के फैसले के स्वागत का भी ऐलान करते हैं। एक आतंकवादी का यह दुस्साहस हमारी कार्यपालिका, न्यायपालिका और राजनीतिक संगठनों के चेहरे पर जबर्दस्त तमाचा है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था अपराधियों को सजा दिलाने में इस कदर विफल रही है कि खुलेआम हत्या और लूटपाट करने वाले भी सांसद और विधायक बन गये हैं। संसदीय लोकतंत्र की इस प्रणाली में कई आपराधिक छवि वाले नेता आतंक फैलाकर अथवा जातीय उन्माद पैदा करके चुनाव जीतने में भी सफल हो जाते हैं। जातियों और विभिन्न सम्प्रदायों में बंटे इस देश में यदि इस चलन को रोका नहीं गया तो इस लोकतंत्र का क्या हश्र होगा, इसका अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है। देश की आजादी के समय ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल की दी गयी चेतावनी आज सत्य प्रतीत होती हुई दिखाई दे रही है। उन्होंने कहा था कि, ''सत्ता बदमाशों, धूर्तों, लुटेरों के हाथों में चली जायेगी। हवा को छोड़कर पानी या रोटी का एक टुकड़ा भी करों की मार से नहीं बचेगा। सारे भारतीय नेता नाकारा और निकम्मे होंगे। वे सत्ता के लिए लड़ मरेंगे और उनके राजनीतिक झगड़ों में भारत खत्म हो जायेगा।''

यद्यपि भारत आज खत्म नहीं है, लेकिन प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों वाला यह देश दुनिया का बाजार बन गया है। इस विश्व बाजार में हमारी भागीदारी तीन फीसदी से घटकर एक फीसदी पर आ गयी है। देश में लगभग तीन करोड़ मामले न्याय के इंतजार में अदालतों में लटके हैं। देश का लगभग 200 लाख करोड़ रुपए का काला धन स्विस बैंकों में जमा है। इतने बड़े देश की अपनी कोई अर्थनीति नहीं है। देश की आधी से अधिक आबादी पानी बिजली के लिए छटपटाती रहती है। एक तिहाई आबादी रोजी रोजगार के लिए छटपटा रही है। ऐसी हालत में हमारे राजनेताओं के सरकार चलाने की क्षमताओं पर सवाल क्यों नहीं उठाये जाने चाहिए। खुलेआम हत्या, लूटपाट करने वाले व्यक्तियों को भी हमारे राजनीतिक दल प्रत्याशी बनाकर लोकसभा और विधानसभाओं के चुनावों में उतारते रहे हैं। इस पर तर्क यह दिया जाता है कि किसी पर आरोप जब तक सिद्ध नहीं हो जाता तब तक उसे दोषी नहीं कहा जा सकता। इसी का यह नतीजा है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के आतंकवादी भी भारत में चुनाव लड़ने का दुस्साहस दिखाते हैं। सबसे ज्यादा दुःखदायी बात तो यह है कि जब अदालत या चुनाव आयोग आरोपित व्यक्यिों को चुनाव लड़ने से रोकने का प्रयास करता है तो सभी राजनीतिक दल एकजुट होकर इसका विरोध करते हैं। हमने अपने संसदीय लोकतंत्र को कहां से कहां तक पहुंचा

हमने अपने संसदीय लोकतंत्र को कहां से कहां तक पहुंचा दिया। यह सोचकर बड़ी हैरानी होती है कि दुनिया में हमारी गिनती भ्रष्टतम देशों में होती है और हमारे राजनेता खीसें निपोरते रहते हैं। नैतिकताविहीन राजनीति देश को पतन के गर्त के सिवा और कहां ले जा सकती है।

दिया। यह सोचकर बड़ी हैरानी होती है कि दुनिया में हमारी गिनती भ्रष्टतम देशों में होती है और हमारे राजनेता खीसें निपोरते रहते हैं।

वास्तव में राजनेता और मंत्रियों का जीवन नैतिक मूल्यों का प्रेरक होना चाहिए। नैतिकताविहीन राजनीति देश को पतन के गर्त के सिवा और कहां ले जा सकती है। लगभग सत्तावन वर्षों की स्वतंत्रता के इतिहास में भारत के सामने दूरगामी प्रभावों वाला इतना विकट संकट कभी नहीं पैदा हुआ, जितना आज उसके सामने है। हांलांकि यह संकट एक दिन या कुछ महीनों में ही नहीं पैदा हुआ है। इसकी शुरूआत 1970 के बाद से हो गयी थी। सत्तावन वर्ष पहले ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ और उत्कृष्ट देश प्रेम शिखर पर थे, आज उनकी योग्यता, देश प्रेम और सत्यनिष्ठा की दृष्टि से बौने राजनीतिज्ञों ने ले ली है, जो देश के हित में कम से कम और अपने हित में अधिक से अधिक ख्याल रखते हैं। शिखर के इन नेताओं के निधन के बाद देश अनाथ हो गया। पिछले छप्पन वर्षों के दौरान अन्य एशियाई देश जिन्होंने हमारे साथ हमारे स्तर पर अपनी प्रगति यात्रा आरम्भ की थी, आज इससे आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से कहीं आगे हैं। लेकिन हमारी गिनती दुनिया के भ्रष्टतम देशों में होती है। हमारी राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था के पतन पर वोहरा कमेटी की रपट पर्याप्त प्रकाश डाल चुकी है। लेकिन देश के नेताओं की नींद इससे भी नहीं टूटी। लेकिन अब हमें भी सचेत हो जाना चाहिए और अपनी उदासीनता को समाप्त कर यह जान लेना चाहिए कि देश की एकता और अखंडता को भारी खतरा है। देश के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह की ईमानदारी और देश के प्रति उनकी निष्ठा पर कोई सवाल नहीं उठा सकता है। लेकिन वे जिस गठबंधन सरकार का नेतृत्व कर रहे हैं उसमें कई ऐसे लोग शामिल हैं जिन पर देश भरोसा नहीं कर सकता। स्वार्थी राजनेताओं ने हमारे जनतंत्र को निरंकुश राजतंत्र बना दिया है।

जिस देश ने महात्मा गांधी और जयप्रकाश नारायण जैसे नेताओं को जन्म दिया, जिन्हें नैतिकता का शक्तिपुंज माना गया है। लेकिन आज हमारे देश की हालत यह है कि हमारी सरकार के पास मामूली राजनेता भी नहीं, जिन्हें मंत्री बनाया जा सके और जो लोगों को प्रेरणा दे सकें। सभी राजनीतिक दल अपराधियों को टिकट देते हैं अथवा उनके धन और बाहुबल का इस्तेमाल कर विभिन्न स्तरों पर चुनाव जीतते हैं। इस मामले में किसी भी दल के हाथ पूरी तरफ साफ नहीं हैं। चुनाव आयोग ने आपराधिक पृष्ठभूमि वाले लोगों के चुनाव लड़ने पर रोक लगाने के लिए कानून बनाने की बात कही थी तो कोई पार्टी तैयार नहीं हुई। यदि उस समय कानून बन जाता तो दागी संसद चुनाव लड़ ही नहीं पाते और मंत्री नहीं बन पाते। राजग ने पोटा का कानून बनाया पर इस मामले में खामोश रहा। ऐसा लगता है कि लोकतंत्र में संख्या के इस खेल में जो नेता या राजनीतिक दल जितने अधिक अपराधियों और बाहुबलियों को टिकट देगा वह उतनी ही अधिक संख्या में जीतकर देश को डुबोयेगा।

आज लोकसभा का चुनाव जीतकर संसद में आये 109 सांसद ऐसे हैं, जिनके खिलाफ बड़े संगीन आरोप हैं। इनके खिलाफ हत्या, बलात्कार, भ्रष्टाचार, डकैती, अपहरण, जबरन वसूली जैसे आरोप भी शामिल हैं। इनमें कईयों ने स्वीकार किया है कि वे करोड़पति हैं। यह धनराशि उन्होंने कैसे अर्जित की, कोई नहीं जानता। इनमें भाजपा के 26, शिवसेना के 4, जनता दल (यू) के 2, कांग्रेस के 15, राजद के 10, द्रमुक के 11 और बसपा के 7 अन्य छोटे दलों के 13 सांसद शामिल हैं। इस मामले में कम्युनिष्ट पार्टियां भी पीछे नहीं हैं। उनके ऐसे सांसदों की संख्या 8 है। इस स्थिति के लिए मतदाता भी कम जिम्मेदार नहीं हैं, जो ऐसे लोगों को चुनते हैं। इसके लिए वे सभी लोग जिम्मेदार हैं जो चुनाव में मतदान करने ही नहीं जाते हैं।

वास्तव में किसी गुणी और अच्छे प्रधानमंत्री के नेतृत्व की योग्यताओं में सर्वोपरि है कुछ नया कर दिखाने की और कभी न समाप्त होने वाली इच्छा। नेता और मंत्री उस व्यक्ति को होना चाहिए जिसके पास दुर्लभ, विशिष्ट क्षमता एवं मानसिक शक्ति होती है। उसकी इस शक्ति को कई रूपों में जाना जाता है, जैसे उसका चमत्कारिक गुण। इस क्षमता और मानसिक शक्ति के द्वारा वह अन्य व्यक्तियों को सम्प्रेषित, प्रेरित एवं गतिशील कर सकता है। नेता वह है जो लोगों को गतिशील बनाने के अलावा उन्हें एक साथ जुटाने की क्षमता रखता हो। किसी विशिष्ट कार्य को पूरा करने और लोगों को प्रेरणा देने का काम राजनेता ही करते हैं। किसी राष्ट्र की प्रगति तभी संभव है जब वह अपने योग्य व्यक्तियों का अधिक से अधिक उपयोग करेगा। दुर्भाग्य से आज भारत में ऐसे नेताओं का भारी अकाल है। ❖

रोजगार योजना वोट प्राप्ति का जरिया

वर्तमान सरकार बड़े उद्योगों को छूट देकर गरीबों को और गरीब बना रही है और रोजगार गारंटी योजना के नाम पर उनका वोट हासिल करना चाहती है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

कांग्रेस सरकार की रोजगार नीति के तीन बिन्दु हैं। पहला बिन्दु श्रम सघन उद्योगों जैसे खिलौने, हीरे जवाहरात, कपड़े आदि उद्योगों को टैक्स में छूट देने का है जिससे इन उद्योगों में तीव्र विकास हो और ज्यादा संख्या में रोजगार उत्पन्न हों। आगामी बजट में इस नीति को वित्त मंत्री लागू करने वाले हैं।

दूसरा बिन्दु श्रम कानून का सुधार है, जिस पर प्रधान मंत्री जी जोर दे रहे हैं। उनकी सोच यह है कि श्रमिकों को इच्छानुसार बर्खास्त करने आदि के अधिकार उद्यमियों को देने से उद्यमियों में अधिक संख्या में श्रमिकों को रोजगार देने का भय समाप्त हो जायेगा। तब वे उत्पादन ऑटोमेटिक मशीनों के स्थान पर श्रमिकों द्वारा करोयेंगे। जिससे रोजगार में वृद्धि होगी।

तीसरा बिन्दु रोजगार गारन्टी योजना का है जिस पर सोनिया गांधी जोर देती हैं। उद्यमियों पर टैक्स लगाकर रोजगार गारंटी जैसे कार्यक्रम के माध्यम से सरकार सीधे रोजगार उत्पन्न करेगी। उपरोक्त तीनों ही बिन्दु आकर्षक लगते हैं। विचार करने का विषय यह है कि ये तीनों नीतियां कमोबेस पश्चिमी देशों में पहले से लागू हैं। कई देशों में श्रम सघन उद्यमों पर न्यून दर से टैक्स आरोपित किया जाता है। श्रमिकों को इच्छानुसार बर्खास्त करने का अधिकार अमरीका एवं इंगलैंड में दिया जा चुका है और यूरोप धीरे–धीरे इस दिशा में बढ़ रहा है। बेरोजगारों को बेरोजगारी भत्ता अथवा अन्य सहायता जैसे बिना किराया दिये रहने के लिये मकान उपलब्ध है, जो हमारी रोजगार गारंटी योजना के समकक्ष है। परन्तु इन नीतियों से पर्याप्त संख्या में रोजगार नहीं उत्पन्न हो रहे हैं। कई देशों में दस फीसदी से अधिक श्रमिक बेरोजगार हैं। अतः संदेह उत्पन्न होता है कि ये नीतियां हमारे देश में कामयाब होंगी। हमें यूरोप के अनुभव पर एक दृष्टि डालनी चाहिये।

इस विषय पर अमरीका की कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एडमन्ड फेलेप्स ने प्रकाश डाला है। श्री फेलेप्स को इस वर्ष के अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है, अतः उनके विचारों पर गौर करना लाजमी है। ''सब्सीडी जो लाभकारी है'' शीर्षक के गत वर्ष के लेख में श्री फेलेप्स ने इन बिन्दुओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। टैक्स में छूट के मुद्दे पर वे लिखते हैं: ''गरीबतम श्रमिक मानसिक पीड़ा से ग्रस्त होते हैं और रोजगार प्राप्त करने की अपनी क्षमता पर उन्हें भरोसा नहीं होता है, इसलिये अच्छा यही है कि सब्सीडी इस प्रकार दी जाये कि वे आत्म–निर्भर हो सकें और रोजगार ढूंढ़ सकें। टैक्स में छूट देने से कुशल श्रमिकों को अधिक लाभ मिलने की संभावना रही है, जबकि रोजगार पर सब्सीडी देने से गरीबतम श्रमिकों को लाभ होगा।'' श्री फेलेप्स के अनुसार उद्यमों को टैक्स में छूट देने से गरीब श्रमिकों को लाभ होना जरूरी नहीं है। मसलन कपड़ा सिलने की फैक्ट्री के द्वारा टैक्स की छूट से मिली रकम से ऑटोमेटिक मशीन लगाई जा सकती है, जिसका संचालन मुट्ठीभर कुशल श्रमिकों के हाथों में होगा। टैक्स में छूट से मिली रकम का उद्यमी किस प्रकार से उपयोग करेगा यह उसके अपने विवेक पर निर्भर है, अतः उसके द्वारा अधिक संख्या में रोजगार बनाना जरूरी नहीं है। अतः श्री फेलेप्स का सुझाव है कि उद्यमों को टैक्स में छूट देने के स्थान पर रोजगार सब्सीडी

देना चाहिये। कम वेतन वाले रोजगार पर सब्सीडी अधिक और ऊंचे वेतन वाले रोजगार पर सब्सीडि शून्य होनी चाहिये। ऐसा करने से उद्यमों के लिए कम क्षमता वाले गरीब श्रमिकों को ज्यादा संख्या में रोजगार देना लाभप्रद हो जायेगा। श्री चिदम्बरम् श्रम–सघन उद्योगों को टैक्स में छूट देना चाहते हैं। इसका उपयोग ओटोमेटिक मशीनों को लगाने में किया जा सकता है। उनकी नीति का अन्तिम परिणाम रोजगार में कटौती हो सकता है। पिछले दस वर्षों में तीव्र आर्थिक विकास के बावजूद संगठित क्षेत्र में रोजगार घट रहे हैं इसीलिये ऐसी संभावना प्रबल है। उन्हें श्री फेलेप्स के सुझाव पर विचार करना चाहिये।

दूसरा बिन्दु श्रम सुधार का है। श्री फेलेप्स के अनुसार ''इस नीति में समस्या यह है कि इससे बेरोजगारी दूर नहीं हो सकती। इससे न्यून वेतन प्राप्त करने वाले अकुशल श्रमिकों को ऊंचे वेतन प्राप्त करने वाले कुशल श्रमिकों में परिणित नहीं किया जा सकता है। अमरीका में अकुशल श्रमिकों के वेतन कम हैं जिससे उनका मनोबल टूट जाता है, वे नौकरी को ज्यादा दिन तक नहीं थाम पाते हैं और बद्हाल हो जाते हैं।'' श्री फेलेप्स के अनुसार अमीर देशों में श्रम बाजार में वेतन पहले ही इतने न्यून हैं कि श्रमिकों के लिए जीवनयापन कठिन हो रहा है और उनका मनोबल टूट रहा है। ऐसे में उद्यमियों को श्रमिकों को बर्खास्त करने का अधिकार देने अथवा न्यूनतम कानून समाप्त करने से अकुशल श्रमिको की स्थिति और बिगड़गी। डॉ मनमोहन सिंह श्रमिकों के हितैषी हैं। उन्हें श्री फेलेप्स के विचारों पर ध्यान देना चाहिये। श्रम सुधारों की उपयोगिता है किन्तु यह बेरोजगारी दूर करने वाला अस्त्र नहीं है। इसके साथ–साथ ऐसी नीतियां लागू करनी होगी जिससे उद्यमी के लिये बड़ी संख्या में रोजगार बनाना लाभप्रद हो जाये।

डॉ मनमोहन सिंह श्रमिकों के हितैषी हैं। उन्हें श्री फेलेप्स के विचारों पर ध्यान देना चाहिये। श्रम सुधारों की उपयोगिता है किन्तु यह बेरोजगारी दूर करने वाला अस्त्र नहीं है। इसके साथ-साथ ऐसी नीतियां लागू करनी होगी जिससे उद्यमी के लिये बड़ी संख्या में रोजगार बनाना लाभप्रद हो जाये।

तीसरा बिन्दु रोजगार गारंटी योजना का है। भाजपा और कांग्रेस सरकारों की मान्यता रही है कि बड़े उद्यमों को अकुशल कुटीर उद्योगों को नष्ट करने की छूट देनी चाहिए। इससे अर्थव्यवस्था में वैश्विक स्तर का कुशल उत्पादन हो सकेगा। फिर बड़े उद्यमों पर टैक्स लगाकर रोजगार गारंटी जैसे कार्यक्रम चलाने चाहिये ताकि बेरोजगारों को कम से कम न्यून स्तर का जीवन मिल जाये। इस मुद्दे पर श्री फेलेप्स कहते हैं: ''सामाजिक सुरक्षा एवं बीमा योजनायें बड़े पैमाने पर यूरोप एवं अमरीका में लागू हैं फिर भी गरीब श्रमिक हाशिये पर हैं। वास्तव में इन कार्यक्रमों ने समस्या को और विकट बना दिया है। इसके कारण श्रमिक को रोजगार ढूंढने की प्रेरणा जाती रहती है, सरकार पर उनकी निर्भरता बढ़ती है और वे उत्पादक कार्य से दूर होते जाते हैं। आवश्यकता अधिक संख्या में, एवं ऊँचे वेतन पर, रोजगार बनाने की है। यह अकुशल श्रम की मांग बढ़ाकर किया जा सकता है।'' श्री फेलेप्स के अनुसार रोजगार गारंटी जैसी योजनायें श्रमिक के मन में परावलम्बन की भावना को बढ़ाती हैं।

रोजगार गारंटी जैसी योजनायें रोजगार ढूंढने अथवा किसी स्वरोजगार करने, जैसे रिक्शा चलाने अथवा मूंगफली बेचने जैसे प्रयासों से श्रमिक को विरत करती है। इस प्रकार यह योजना दीर्ध काल में श्रमिक को गहरे गढ्ढे में धकेलती हैं। सोनिया गांधी ने चुनाव के समय मानवीय चेहरे का जो वायदा जनता से किया था उसका कार्यान्वयन वे इस कार्यक्रम के माध्यम से करा रही हैं। उन्हें यह समझना चाहिये कि वे अनचाहे ही श्रमिकों को नुकसान पहुंचा रही हैं।

फेलेप्स का मूल सुझाव यह है कि अकुशल श्रमिकों को रोजगार देने के लिये उद्योगों को सब्सीडी दी जाये। इससे ज्यादा संख्या में रोजगार बनेंगे। लगभग यही बात गांधीजी ने 1921 के यंग इंडिया में कही थी कि वे नंगे गरीब को कपड़े के स्थान पर रोजगार देना चाहते हैं। परन्तु सोनियाजी, मनमोहन सिंह और पी चिदम्बरम के नेतृत्व में कांग्रेस पहले बड़े उद्योगों को छूट देकर गरीब को और गरीब बनाने की नीति अपना रही हैं और उसे गरीबी से मामूली राहत दिलाकर मात्र उसके वोट हासिल करना चाहती हैं। ❖

विफल होता बाजार का मॉडल

कृषि को बाजार के हवाले कर देने का दुष्परिणाम अमरीका आज भुगत रहा है। भारत में अमरीकी नकल की खेती भारतीय कृषि का सत्यानाश कर देगी।

■ देवेन्द्र शर्मा*

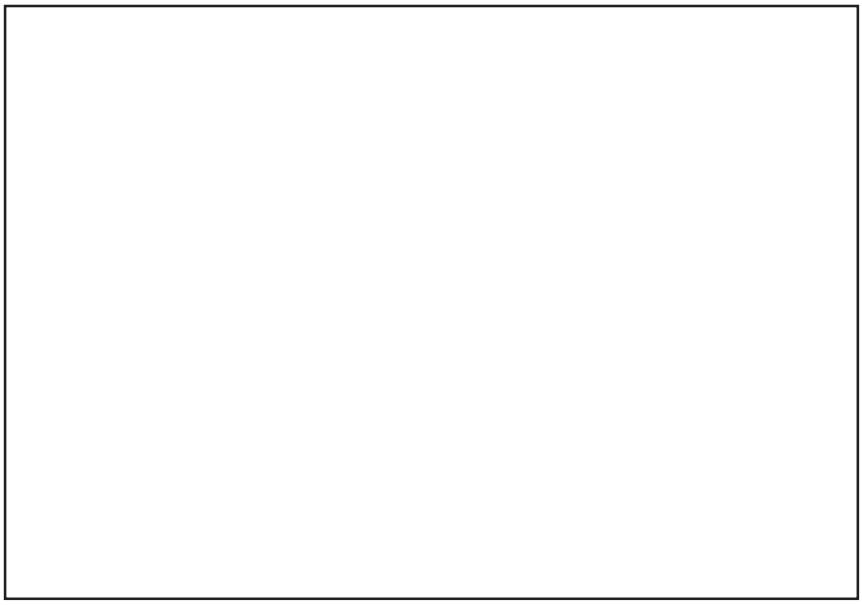

अफसोस की बात यह है कि भारतीय किसानों को भी उन्हीं चीजों को अपनाने के लिए कहा जा रहा है जिनसे विकसित देशों के किसान खेती छोड़ने को मजबूर हैं। नीति-निर्माता और खेती आधारित कंपनियां यह कहते थकती नहीं कि खेती को सीधे बाजार से जोड़कर दूसरी हरित क्रांति का सपना साकार किया जा सकता है और किसानों को पुरानी मंडी प्रणाली से छुटकारा मिल सकता है।

इस बात से मैं आश्चर्यचकित हूँ कि अमरीका, यूरोप तथा अन्य अमीर देशों के किसान खेती छोड़ रहे हैं। मन में सीधे प्रश्न खड़ा होता है कि आखिर क्यों? उन्हें तो बहुत ज्यादा सब्सिडी मिलती है। वे पढ़े–लिखे हैं और साथ ही उन्हें नई तकनीक का लाभ भी है। वे वायदा कारोबार और वस्तु विनिमय का फायदा आसानी से उठा सकते हैं। वे सुपर मार्केट, रिटेल स्टोर के जरिए सीधे बाजार से जुड़े हैं, जिसकी वजह से उत्पादों की अच्छी कीमत उन्हें मिलती है। लेकिन इन सबके बावजूद यह सुनने को मिल रहा है कि वे कृषि छोड़ रहे हैं। जब बाजार किसानों के हितों के हिसाब से काम कर रहा हो तो यह कैसे संभव है। इस बात में कितनी सच्चाई हो सकती है, जब यह माना जा रहा है कि निजी व्यापारी किसानों की आय बढ़ा रहे हैं? विकसित देशों के किसान परिवार की बर्बादी के पीछे जरूर कुछ वजहें होंगी। संभव है कि विकसित देशों में किसानों की जमीनी सच्चाई उनके बारे में प्रचारित किए जाने वाले तथ्यों से बिल्कुल अलग हो या फिर बाजार आधारित अर्थव्यवस्था तथा कृषि की हमारी समझ में जरूर कहीं न कहीं बहुत बड़ी खामी है।

सबसे ज्यादा अफसोस की बात यह है कि भारतीय किसानों को भी उन्हीं चीजों को अपनाने के लिए कहा जा रहा है जिनसे विकसित देशों के किसान खेती छोड़ने को मजबूर हैं। नीति–निर्माता और खेती आधारित कंपनियां यह कहते थकती नहीं कि खेती को सीधे बाजार से जोड़कर दूसरी हरित क्रांति का सपना साकार किया जा सकता है और किसानों को पुरानी मंडी प्रणाली से छुटकारा मिल सकता है। लेकिन वे एक बात कभी नहीं कहते हैं कि कृषि का यही मॉडल अमरीका जैसे देश में क्यों नहीं चल रहा है। वहाँ किसान बड़ी तेजी से खेती छोड़ रहे हैं। कृषि आज कृषि व्यापार चलाने वाले निगमों के हाथों में चला गया है।

अब यूरोप का मामला ही लीजिए। यूरोप अपने किसानों को दुनिया में सबसे ज्यादा सब्सिडी देता है। यहाँ के किसानों को कृषि में प्रवेश करने के लिए सब्सिडी मिलती है, गाय, सुअर, या घोड़े रखने के लिए सब्सिडी मिलती है और साथ ही कृषि के मशीन खरीदने के कर्ज पर सब्सिडी मिलती है, जो कि बाद में अक्सर धीरे–धीरे माफ कर दी जाती है। न सिर्फ इतना ही, बल्कि विभिन्न पेड़–पौधे तथा झाड़ लगाने के लिए भी सब्सिडी मिलती है और सबसे बड़ी बात है कि वे वायदा कारोबार कर सकते हैं। ग्रामीण संरचना भी काफी अच्छी है। किसानों को क्रेडिट कार्ड तथा बीमा की भी सुविधा उपलब्ध है। साथ ही भारत की तरह वहाँ मंडी जैसी कोई चीज नहीं है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो किसान

*लेखक कृषि व खाद्य नीति के विशेषज्ञ हैं।

सीधे बाजार से जुड़ा है।

फिर भी प्रत्येक मिनट में एक किसान वहाँ कृषि छोड़ रहा है। अमरीका में जितने लोग कृषि में लगे हैं उससे कहीं ज्यादा जेलों में बंद हैं। तकरीबन 70 लाख लोग जेलों में बंद हैं या फिर जमानत या पेरोल पर हैं जबकि कृषि में सिर्फ सात लाख लोग ही हैं। यह अमरीकी कृषि नीतियों के कारण है कि आज किसान कृषि से तौबा कर रहे हैं। यह इतिहास में पहली बार हुआ है कि 2000 की जनगणना में अमरीका ने अपने किसानों की गिनती–ही नहीं की। दरअसल किसानों की संख्या गिनने की जरूरत भी नहीं है क्योंकि किसानों की संख्या वहाँ आज सबसे कम हो गई है। ऐसे में जब अमरीका कृषि की बात कर रहा हो तो इसका सीधा सा आशय है कि वह कृषि के निगमीकरण और मशीनों की बात कर रहा है।

दूसरी तरफ मशीनों पर आधारित कृषि सीधे सुपर मार्केट से जुड़ी है, इसके बावजूद अमरीका में बिचौलियों की संख्या लगातार बढ़ी है। बिचौलियों की नई पीढ़ी किसी संस्था की छत्रछाया में काम करती है। आज गुणवत्ता नियंत्रक व्यक्ति, प्रोशेसर से लेकर खुदरा व्यापारियों तक में बिचौलियों की संख्या लगातार बढ़ रही है और इनकी संख्या में बढ़ोत्तरी के कारण किसानों की आमदनी घटी है। एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि 1995 में किसान एक डॉलर के अपने उत्पाद को बाजार में बेचता था तो उसे 70 सेंट की आमदनी होती थी। दस साल बाद यानी 2005 में किसानों की ये आदमनी सीधे गिर कर चार सेंट हो गई है और बाकी बिचौलियों के जेब में चला गया।

जो अर्थशास्त्री वाल–मार्ट, टेस्को, रिलांयस और भारती टेलिकॉम जैसे विश्व स्तर के खुदरा व्यापारियों के प्रवेश को जायज ठहराते हैं, वे लगातार कहते हैं कि इनके खुदरा बाजारों के आने से बिचौलियों की संख्या में कमी आएगी और किसानों के लिए अवसर तो बढ़ेगें ही, साथ ही उनकी आमदनी भी बढ़ेगी। खैर, वास्तविकता यह है कि इसी श्रृखंला के कारण अमरीकी किसान तबाह हो रहे हैं। अगर दूसरी हरित क्रांति का मक्का, अमरीका की ये हालत है, तो ऐसे में मैं सोचता हूँ कि रिटेल चेन के आने के बाद भारतीय किसानों की क्या हालत होगी। अगर बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहित करने वाले सोचते हैं कि किसानों की आत्महत्या की बात करना बेकार की बात है तो यही कहा जा सकता है कि वे यही चाहते हैं कि शुतुरमुर्ग की तरह रेत में अपना सर गाड़ लें और वही देखें जो वे हमें दिखाना चाहते हैं।

जो अर्थशास्त्री खुदरा कारोबार की विश्व स्तरीय कंपनियों के भारत प्रवेश को जायज ठहराते हैं, वे लगातार कहते हैं कि इनके आने से बिचौलियों की संख्या में कमी आएगी और किसानों की आमदनी बढ़ेगी। लेकिन वास्तविकता यह है कि इन्हीं के कारण अमरीकी किसान तबाह हो रहे हैं।

अमरीका में किसानों के बचाव के लिए सरकार सीधे उनकी राहत के लिए आगे आ गई है। हर फार्म को तकरीबन 33 हजार डॉलर का समर्थन सरकार की तरफ से दिया जा रहा है। कनाडा में नेशनल फार्मर यूनियन के अध्ययन से यह तथ्य सामने आया है कि 70 कृषि आधारित कंपनियां तो फायदे में जा रही हैं लेकिन सिर्फ किसानों को इन फूड चेनों में घाटा हो रहा है। कुल मिलाकर अमीर देशों में किसान सरकारी खैरात पर ही पल रहे हैं

अब बारी 60 करोड़ भारतीय किसानों की है। अमीर देशों के किसान जिस तरह से बर्वाद हुए उसी तरह से बर्वाद होने की अब बारी इन भारतीय किसानों की है। ऐसे हालात में पहले से हाशिए पर रह रहे किसानों के लिए क्या बचता है। न सिर्फ कृषि आधारित कंपनियां, बल्कि निजी बैंक और सूक्ष्म कर्ज उपलब्ध कराने वालों की लंबी फौज स्वयं सहायता समूह के जरिए साहूकारों की जगह ले चुकी हैं। एक वरिष्ठ बैंकर का कहना है कि ग्रामीण इलाकों से ढेर सारे पैसे बनाने हैं। जो किया जा रहा है उससे किसानों की जिंदगी में कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है और न उनके बच्चे स्कूलों में पढ़ने के लिए जाने वाले हैं। दुनिया भर में जो अनुभव किया गया है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह व्यवस्था कृषि आधारित व्यापार में शामिल कंपनियों को पूरा केक देने का तरीका है। ❖

मुसलमानों की चिंता किसे है?

सच्चर समिति का गठन, कार्यप्रणाली एवं निष्कर्षों से यह स्पष्ट है कि सरकार ने इस समिति का गठन निहित राजनैतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए किया है।

■ **बनवारी**

पिछले साल मार्च में केन्द्र सरकार ने न्यायमूर्ति राजिंदर सच्चर की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय समिति गठित की थी। इस समिति का काम देश में मुसलमानों की शैक्षिक, आर्थिक और व्यावसायिक स्थिति का पता लगाना था। सच्चर समिति ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी है और उसमें कहा गया है कि मुसलिम समुदाय दूसरे समुदायों के मुकाबले अधिक गरीब है, अधिक अशिक्षित है, निजी और सरकारी संस्थानों में अपनी जनसंख्या के अनुपात में उसे कहीं कम नौकरियां प्राप्त हैं और जो लोग अपना रोजगार कर रहे हैं उन्हें वित्तीय संस्थानों से औरों के मुकाबले कम कर्ज मिलता है। ऐसा नहीं है कि इस समिति को बनाए जाने से पहले मुसलमानों की स्थिति के बारे में सही और विस्तृत जानकारी नहीं थी। फिर भी मुसलमानों के संबंध में नवीनतम स्थिति जानने के लिए प्रयत्न किए जा सकते थे। इसलिए यह समिति बनाई गई तो इस पर किसी क्षेत्र से कोई खास विरोध नहीं हुआ। यह आशा की गई कि यह समिति मुसलमानों की शैक्षिक और आर्थिक दुर्दशा को सामने ला सकेगी और उसके आधार पर कुछ नीतियां बनाई जा सकेंगी ताकि मुसलमानों की स्थिति को कुछ सुधारा जा सके।

लेकिन जल्दी ही इस समिति को बनाए जाने के पीछे छिपा हुआ राजनीतिक उद्देश्य सामने आ गया। इस समिति का गठन मार्च में किया गया था और मई में आंध्र प्रदेश की कांग्रेस सरकार ने शिक्षा संस्थानों में मुसलमानों को पांच प्रतिशत आरक्षण दिए जाने की घोषणा कर दी। कांग्रेस की एक राज्य सरकार का यह प्रायोगिक निर्णय था और अगर वह निर्विरोध लागू हो गया होता तो सच्चर समिति की रिपोर्ट का लाभ उठाकर केन्द्र सरकार भी मुसलमानों को आरक्षण का लाभ दिए जाने के बारे में सोच सकती थी। आंध्र प्रदेश की सरकार ने अपने पिछड़ा वर्ग आयोग की रिपोर्ट को आधार बनाकर यह निर्णय लिया था। पिछड़ा वर्ग की रिपोर्ट में कहा गया था कि मुसलमानों को पिछड़े वर्ग में गिनते हुए उन्हीं के बीच की एक अलग कोटि मानकर आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। लेकिन इस निर्णय के खिलाफ कुछ लोग अदालत चले गए और पिछले साल नवंबर में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पांच सदस्यीय पीठ ने धार्मिक आधार पर आरक्षण दिए जाने को संविधान विरोधी बताते हुए राज्य सरकार के इस निर्णय को रद्द कर दिया।

केन्द्र सरकार को दूसरा झटका तब लगा जब सच्चर समिति ने सेना में मुसलमानों की संख्या से संबंधित आंकड़े मांगे। अब तक मुसलमानों की स्थिति के बारे में जितने भी सर्वेक्षण हुए हैं उनमें सेना को अलग रखा गया है। इसलिए जब सच्चर समिति ने सेना से यह बताने को कहा कि सेना में विभिन्न स्तरों पर कितने मुसलमान काम कर रहे हैं तो इसका व्यापक विरोध हुआ। अगर इसका विरोध केवल राजनीतिक स्तर पर होता तो उसे नजरअंदाज कर दिया जाता। पर इसका विरोध न केवल सेना के स्तर पर हुआ बल्कि थल सेना अध्यक्ष जेजे सिंह ने अपना विरोध सार्वजनिक करने में भी कोई परहेज नहीं किया। सेना के इतने मुखर विरोध के बाद सच्चर समिति की कार्यप्रणाली पर आक्षेप आना स्वाभाविक था और इसे आधार बनाकर मुसलमानों से संबंधित अपना राजनीतिक एंजेंडा आगे बढ़ाना मनमोहन सिंह सरकार के लिए और भी मुश्किल हो गया।

रही सही कसर सच्चर समिति की रिपोर्ट ने पूरी कर दी, जैसा कि अपेक्षित था। सच्चर समिति ने लगभग सभी क्षेत्रों में मुसलमानों की दुर्दशा की व्यापक तस्वीर

सबसे ज्यादा चौकाने वाले आंकड़े पश्चिम बंगाल से संबंधित हैं। राज्य की एक चौथाई आबादी मुसलमानों की है और इसलिए समाज और राजनीति में उनका दखल अधिक होना चाहिए था। यह अपेक्षा इसलिए और भी बढ़ जाती है कि इस राज्य में पिछले तीन दशक से मार्क्सवादी शासन कर रहे हैं। लेकिन यहां के आंकड़ें बताते हैं कि शिक्षा, और निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के मामले में मुसलमानों की स्थिति राज्य के दलितों से भी गई गुजरी है।

प्रस्तुत की है। लेकिन अपनी रिपोर्ट से उन्होंने मनमोहन सिंह सरकार के सामने एक राजनीतिक कठिनाई भी पैदा कर दी है। इस रिपोर्ट में केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं बल्कि राज्य स्तर पर भी मुसलमानों की दुर्दशा के आंकड़ों का संग्रह किया गया है। राज्य स्तर पर जो तस्वीर उभर कर आती है उससे यह कहना असंभव हो गया है कि मुसलमानों की स्थिति कांग्रेस या अपने आपको धर्मनिरपेक्ष बताने वाले दलों द्वारा शासित राज्यों में अच्छी है और मुसलमानों के बारे में पूर्वाग्रह लेकर चलने वाले दलों द्वारा शासित राज्यों में बुरी है। इससे उलट रिपोर्ट से यही पता लगता है कि मुसलमानों की स्थिति उन राज्यों में सबसे ज्यादा बुरी है, जहां अपने आपको धर्मनिरपेक्ष मानने वाले दलों का लंबा शासन रहा है।

सबसे ज्यादा चौकाने वाले आंकड़े पश्चिम बंगाल से संबंधित हैं। राज्य की एक चौथाई आबादी मुसलमानों की है और इसलिए समाज और राजनीति में उनका दखल अधिक होना चाहिए था। यह अपेक्षा इसलिए और भी बढ़ जाती है कि इस राज्य में पिछले तीन दशक से मार्क्सवादी शासन कर रहे हैं। लेकिन यहां के आंकड़ें बताते हैं कि शिक्षा, और निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के मामले में मुसलमानों की स्थिति राज्य के दलितों से भी गई गुजरी है। ऐसा नहीं है कि पश्चिम बंगाल में शिक्षा और रोजगार में मुसलमानों की क्या स्थिति है, इसकी जानकारी राज्य सरकार को पहले से न रही हो। फिर ऐसा क्यों है कि मार्क्सवादी सरकार मुसलमानों को सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ाने के लिए कुछ नहीं कर पाई?

लेकिन मार्क्सवादियों के पश्चिम बंगाल को अगर भूल भी जाएं तो यह प्रश्न अपने आपको धर्मनिरपेक्ष ओर अल्पसंख्यकों का हितैषी बताने वाले किसी भी दल से पूछा जा सकता है। केन्द्र में अब तक अधिकतर समय कांग्रेस की ही सरकार रही है और कांग्रेस यह दावा करती रही है कि राष्ट्रीय राजनीति में उसी ने मुसलमानों के हितों का सबसे अधिक ध्यान रखा है। राष्ट्रीय राजनीति ही क्यों, राज्यों में भी अधिकतर समय ऐसे ही दलों का शासन रहा है जो अपने आपको धर्मनिरपेक्ष और अप्लसंख्यकों का हितैषी बताते हैं। सच पूछें तो हमारे यहां ऐसे ही दलों का प्राधान्य है और वे दल अल्पसंख्यांक में ही हैं जो मुसलमानों के बारे में पूर्वाग्रह रखते हैं। फिर ऐसा क्या है कि सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में मुसलमानों की स्थिति कमजोर है? अगर पिछले साठ साल में इस दिशा में कुछ नहीं हो पाया तो लगभग उसी तरह की राजनीति और शासन सबंधी नीतियों के आधार पर आगे हो पाएगा, इसकी आशा कैसे की जा सकती है?

कांग्रेस पर काफी दिनों से यह आरोप लगता रहा है कि वह मुसलमानों को एक वोट बैंक के रूप में तो इस्तेमाल करती है पर उसकी शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक दशा सुधारने के लिए कुछ नहीं करती। पिछले कुछ समय से यह भावना उत्तर भारत के मुसलिम नेताओं में भी घर कर गई है और इसी कारण यहां के विभिन्न राज्यों में कांग्रेस का मुसलिम आधार खिसक रहा है। जहां मुसलमानों को अपनी तरफदारी करने वाला कोई दूसरा दल दिखाई दिया है वहां वे कांग्रेस को छोड़कर उसके साथ हो लिए हैं। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे मुस्लिम संख्याबहुल राज्यों में कांग्रेस का सफाया हो गया है। लेकिन जो आरोप कांग्रेस पर लगाया जाता है क्या वही आरोप उन सभी धर्मनिरपेक्षता का दावा करने वाले दलों पर नहीं लगाया जा सकता जो अपने आपको मुसलमानों का हितैषी सिद्ध करने के लिए जमीन–आसमान सिर पर उठाए रहते हैं? वह चाहे समाजवादी पार्टी हो, चाहे मार्क्सवादी और चाहे तेलुगूदेशम।

दूसरी तरफ भारतीय जनता पार्टी है, जो कांग्रेस और उसके जैसे दूसरे दलों पर यह आक्षेप मंढ़ने का कोई मौका नहीं चूकती कि वे मुसलिम तुष्टिकरण की राजनीति कर रहे हैं। अगर इस देश में सचमुच मुसलमानों का तुष्टीकरण किया गया होता तो क्या मुसलमानों की ऐसी ही दुर्दशा होती जैसी सच्चर समिति और उससे पहले की समितियों के आकलन में उभर कर आई और आती रही है। भाजपा और उसके जैसे दूसरे दलों ने यह देखने की कोशिश नहीं की कि मुसलमानों की पक्षधरता के नाम पर कांग्रेस और उसकी जैसी दूसरी पार्टियों ने सिर्फ इतना किया है कि केवल धार्मिक पहचान बनी रहे और अपनी इसी पहचान के आधार पर वे राजनीतिक रूप से गोलबंद होते रहें। भारत एक बहुसंस्कृति वाला देश है और मुसलमानों की धार्मिक पहचान के सामने कोई वास्तविक संकट नहीं है। फिर भी लगातार उनमें यह भावना पैदा की जाती रही है कि अगर वे एक धार्मिक समुदाय के रूप में राजनीतिक रूप से गोलबंद नहीं रहे तो उनकी पहचान खतरे में पड़ सकती

असल में मुसलिम समाज की आंतरिक स्थिति ही ऐसी है कि वह उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से आगे बढ़ाने में सहायक नहीं होती। अंग्रेजों के जमाने से मुसलमानों के मन में एक अलगाववादी प्रवृत्ति पैदा हो गई है। हो सकता है कि बहुसंख्यक समाज के व्यवहार ने भी इसमें कुछ योगदान किया हो। पर अधिक योगदान इस भावना का है कि उनकी मूल पहचान एक धार्मिक समाज के रूप में ही है और यह पहचान कुरान और हदीस के विधि–निषेधों को शब्दशः मानने से ही बनी रह सकती है।

है। भाजपा ने अपने व्यवहार से कांग्रेस और उसके जैसे दूसरे दलों को भेड़िया आया, भेड़िया आया का झूठा शोर मचाने का पूरा अवसर प्रदान किया है। यह सब जानते हैं कि मुसलमानों को सार्वजनिक जीवन की मुख्यधारा से अलग–थलग रखने के क्या खतरे हैं। अगर देश के पंद्रह करोड़ मुसलमान आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े और अलग–थलग बने रहते हैं तो क्या देश समुचित रूप से अपना विकास कर सकता है? मुसलमानों को मुख्यधारा में मिलाने के लिए यह आवश्यक था कि उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन पर अधिक ध्यान दिया जाए। हमारा देश ऐसा है कि उसमें विभिन्न वर्ग आर्थिक रूप से एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं और इसलिए उनमें पूरी तरह अलगाव रखा जा सकता। इस विशेषता का पूरा फायदा उठाते हुए कोशिश की जानी चाहिए थी कि मुसलमानों को लगे कि देश की आर्थिक प्रगति और सामाजिक समरसता में उनकी भी उतनी ही बड़ी भूमिका है, जितनी दूसरों की है। लेकिन अपने क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों के चलते हमारे राजनेताओं ने इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किया।

ऐसा नहीं है कि राजनीतिक दल और उनके नेता चाहते तो ऐसा आसानी से हो गया होता। असल में मुसलिम समाज की आंतरिक स्थिति ही ऐसी है कि वह उन्हें सामाजिक और आर्थिक रूप से आगे बढ़ाने में सहायक नहीं होती। अंग्रेजों के जमाने से मुसलमानों के मन में एक अलगाववादी प्रवृत्ति पैदा हो गई है। हो सकता है कि बहुसंख्यक समाज के व्यवहार ने भी इसमें कुछ योगदान किया हो। पर अधिक योगदान इस भावना का है कि उनकी मूल पहचान एक धार्मिक समाज के रूप में ही है और यह पहचान कुरान और हदीस के विधि–निषेधों को शब्दशः मानने से ही बनी रह सकती है। भारत में जहां सभी नियम और परंपराएं देश और काल के अनुरूप बदली जाती रही हैं, मुसलमान भी अपने धार्मिक और सामाजिक व्यवहार को देश–काल सम्मत बनाने के लिए प्रेरित हो सकते थे। वे इस्लाम को भी एक अधिक ग्राह्य स्वरूप दे सकते थे। लेकिन हुआ इससे उल्टा और आज भारत के मुसलमान दुनिया के अधिकतर देशों के मुसलमानों से अधिक रुढ़िवादी हैं। मुसलमानों की आर्थिक दुर्दशा के लिए सबसे अधिक जिम्मेदार उनके बीच व्याप्त व्यापक अशिक्षा है। यह ध्यान रखना चाहिए कि हिंदुओं के बीच शिक्षा के प्रसार में सरकार से भी बड़ी भूमिका उनकी धार्मिक और सामाजिक संस्थाओं की रही है। उत्तर भारत में डीएवी और सनातन धर्म स्कूल, कॉलेजों का विशाल तंत्र इसका एक उदाहरण है। इसके अलावा जातीय संस्थाओं ने भी शिक्षा के प्रचार–प्रसार में बड़ा योगदान दिया है। इनकी तुलना में मुसलमानों के बीच से जो सामाजिक और धार्मिक नेतृत्व उभरता रहा उसने अपने समाज के बीच शिक्षा बढ़ाने के बजाय उन्हें उससे दूर ही रखा। मुसलिम नेताओं द्वारा पश्चिमी मान्यताओं का विरोध तो समझ में आता है, पर इस विरोध के नाम पर वे अपने लोगों के शैक्षणिक और आर्थिक विकास का रास्ता अवरूद्ध रखें यह समझ में नहीं आ सकता। अगर मुसलमानों के बीच से आगे बढ़ने की ललक पैदा नहीं होती तो कोई भी सरकारी तंत्र उन्हें ऊपर नहीं उठा सकता।

अगर मनमोहन सिंह सरकार सचमुच मुसलमानों का भला करना चाहती है तो उसे सबसे पहले उस राजनीति को तिलांजलि देनी होगी जो मुसलमानों में अलगाव की भावना भरती है, और उन्हें दूसरों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर देश की मुख्यधारा में आगे बढ़ने से रोकती है। उसके बाद ही उसका ध्यान उन नीतियों और कार्यक्रमों की तरफ जा सकता है जो मुसलमानों की शैक्षिक, आर्थिक और व्यावसायिक दशा सुधारने में कुछ मददगार हो सकते हैं। उसके पास गोपाल समिति की पुरानी रिपोर्ट तो थी ही, पुलिस और अर्धसैनिक बलों में मुसलमानों की भर्ती के बारे में 1995 की राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की रिपोर्ट भी थी और छह मई, 1996 को सरकार को सौंपी गई योजना आयोग की एक बारह सदस्यीय उप समिति की रिपोर्ट भी, जिसमें मुसलमानों की दशा सुधारने के विस्तृत सुझाव दिए गए थे। सच्चर समिति की रिपोर्ट सरकार को सौंप दी गई है और आने वाले दिनों में उसे संसद में रखा जा सकता है और उस पर बहस करवाई जा सकती है। अच्छा हो यह बहस क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठकर की जाए। हमारे नेता व्यापक राष्ट्रीय हित में सोचना शुरू करें और ऐसे किसी कार्यक्रम पर आम सहमति बना सकें जो मुसलमानों को उनकी अभी की दुर्दशा से निकाल कर बाकी समाज के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित और उत्साहित कर सकें। ❖

'अंतिम मुगल' ने मचाया हड़कंप

शोध पर आधारित पुस्तक ''लास्ट मुगल'' के तथ्य ने न केवल वामपंथी इतिहास लेखकों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, अपितु इस हेतु नियामक संस्था आइसीएचआर को भी कठघरे में खड़ा कर दिया है।

■ **देवेन्द्र स्वरूप**

भारत सरकार ने 1857 की क्रांति की डेढ़ सौवीं वर्षगांठ की बड़े पैमाने पर आयोजन की जैसे ही घोषणा की, हमारे कम्युनिस्ट इतिहासकार रेवड़ियां लूटने के लिए तुरन्त दौड़ पड़े। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एच.आर.) के सदस्य सचिव ने प्रचारित किया कि परिषद् इस अवसर पर 1857 के बारे में नये स्रोतों को प्रकाशित करेगी। उन्होंने एक महत्त्वूपर्ण सूचना यह दी कि हमें 1857 की क्रान्ति के बारे में कार्ल मार्क्स के न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून नामक अमरीकी समाचार पत्र में प्रकाशित लेखों की मूल प्रतियां मिल गयी हैं। तुरन्त भारत सरकार ने परिषद् को इस कार्य के लिए एक करोड़ रुपया आवंटित कर दिया पर परिषद् को वह अपर्याप्त लगा, अतः एक करोड़ रुपया और देने की प्रार्थना की गई है। एक समिति गठित कर दी गई है, जिसमें प्रो. इरफान हबीब के साथ 'महान' इतिहासकार अर्जुन देव को भी रखा गया है। अब मध्यकालीन इतिहास के विशेषज्ञ इरफान हबीब 1857 के विशेषज्ञ की छवि बनाने में लग गए हैं।

स्काट मूल के इतिहासकार विलियम डेलरिम्पल ने बहादुर शाह जफर पर अपनी रचना 'लास्ट मुगल' सबसे पहले प्रकाशित करके हड़कम्प मचा दिया। उनका दावा है कि यह पुस्तक राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में दशकों से उपेक्षित 20,000 उर्दू–फारसी दस्तावेजों के अध्ययन पर आधारित है। उन्होंने पत्रकारों के सामने कह दिया कि भारतीय इतिहासकार आलसी हैं, शोध के लिए परिश्रम नहीं करना चाहते। इन समकालीन मुस्लिम दस्तावेजों के आधार पर उन्होंने वर्षों से स्थापित–प्रचारित इस मिथक को तोड़ दिया कि 1857 की क्रांति में हिंदुओं और मुसलमानों ने कन्धे भिड़ाकर समान प्रेरणा से एक ही लक्ष्य के लिए संघर्ष किया था। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि 1857 में मुगल बादशाह हिन्दू सामन्तों से शून्य था, और 1857 की क्रांति में भाग लेने वाले लगभग सभी मुसलमानों की एक मात्र प्रेरणा मुस्लिम राज्य की पुनरस्थापना के लिए जिहाद थी, क्योंकि उन दस्तावेजों में पदे–पदे 'जिहाद' और 'मुजाहिदीन' का शब्दोच्चार मिलता है। डेलरिम्पल की यह शोध हमारे लिए आश्चर्य नहीं है, क्योंकि हमने अपने स्वतंत्र अध्ययन के आधार पर पांचजन्य (21 मई 2006) में '1857 की 150वीं वर्षगांठ से जुड़े सवाल शीर्षक लेख में ऐसे कुछ प्रमाण प्रस्तुत किए थे।

वामपंथी इतिहासकार कठघरे में

प्रो. इरफान हबीब डेलरिम्पल के उक्त आरोप से तिलमिला गए। अंग्रेजी साप्ताहिक 'आउटलुक' (20 नवम्बर) में उन्होंने सफाई दी कि भारतीय इतिहासकार आलसी नहीं, मजबूर हैं। मजबूर हैं, क्योंकि वे देस्तावेज उन्नीसवीं शताब्दी की जिस 'शिकस्ता' लिखावट में हैं उसे जानने वाले लोग अब नहीं हैं, और जब तक इतिहासकार स्वयं उन दस्तावेजों को न पढ़ें तब तक वह शोध नहीं कर सकता। पर 'शिकस्ता' लिखावट को जानने वाले इतिहासकार क्यों नहीं हैं, इसके लिए प्रो. हबीब ने स्वतंत्र भारत में 'उर्दू की हत्या करने की सोची समझी नीति को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने आरोप लगाया कि इस नीति के कारण 'हमारे अतीत के एक बड़े हिस्से पर ताला लग गया । यह तर्क हास्यापद है। आज भी अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, हमदर्द विश्वविद्यालय में उर्दू भाषा का वर्चस्व है। हैदराबाद में एक पृथक उर्दू विश्वविद्यालय खुला है। दिल्ली विश्वविद्यालय व जे.एन.यू. में उर्दू–फारसी के अलग विभाग हैं। देवबन्द में दारुल उलूम, लखनऊ में नदवा और देशभर में बिखरे हजारों–हजारों मदरसे केवल उर्दू माध्यम से शिक्षा देते हैं। क्या शोध की तड़प रखने वाले, मुट्ठीभर शोधकर्ताओं को उर्दू–फारसी की शिकस्ता लिखावट को सिखाने के लिए यह तन्त्र पर्याप्त नहीं है? क्या यह उर्दू की हत्या की नीति का द्योतक हैं? शायद प्रो. हबीब चाहते हैं कि भारत के समूचे शिक्षा तंत्र को उर्दू माध्यम के मदरसों में परिणत कर दिया जाए।

पर, डेलरिम्पल पर प्रो. हबीब के गुस्से का मुख्य कारण 'आलस्य' के आरोप से अधिक इस बात पर है कि उन्होंने 1857 में हिन्दू–मुस्लिम एकता के बहु

डेलरिम्पल पर प्रो. हबीब के गुस्से का मुख्य कारण 'आलस्य' के आरोप से अधिक इस बात पर है कि उन्होंने 1857 में हिन्दू-मुस्लिम एकता के बहु प्रचारित मिथक पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया और उस क्रान्ति में मुस्लिम सहभाग के पीछे 'जिहाद' की प्रेरणा को उजागर किया।

प्रचारित मिथक पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया और उस क्रान्ति में मुस्लिम सहभाग के पीछे 'जिहाद' की प्रेरणा को उजागर किया। प्रो. हबीब ने साम्प्रदायिक एकता के प्रमाणस्वरूप सैयद अहमद खान के बगावत ए–हिन्द का उल्लेख किया। किन्तु हमने तो आज तक यही पढ़ा था कि पुस्तक में सैयद अहमद खान ने बगावत का पूरा दोष हिन्दुओं के मत्थे मढ़कर मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार के कोप से बचाने की कोशिश की थी। प्रो. हबीब ने सर सैयद की दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का उल्लेख क्यों नहीं किया, जिसमें उन्होंने बिजनौर जिले (उ.प्र.) में 1857 के क्रान्तिकाल में हिन्दू–मुस्लिम सत्ता संघर्ष का जो आंखों देखा विवरण प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में उन्होंने 'जिहाद' के सत्य को 'संकीर्ण' एवं काल्पनिक बताने के लिए वियतनाम, इराक और फिलस्तीन के आधुनिक उदाहरण दे डाले। ये तर्क प्रो. हबीब की मानसिकता को प्रगट करते हैं जो उन्हें मार्क्सवादी के बजाय मुस्लिम कट्टरवाद के खेमे में खड़ा कर देती है। क्या वे अपनी इस मानसिकता को छिपाने के लिए मार्क्सवाद के बुरके का इस्तेमाल करते हैं।

मार्क्स और 1857

मैं सोच ही रहा था कि आई.सी.एच. आर. की मार्क्स के डेढ़ सौ साल पहले के लेखों की मूल प्रतियाँ कहां से प्राप्त हो सकती हैं कि मेरी दृष्टि 2006 में प्रकाशित एक पुस्तक 'कार्ल मार्क्स आन इंडिया' पर पड़ गई। इस पुस्तक का संपादन अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रो. इकबाल हुसैन ने किया है। उन्होंने लिखा है कि इस पुस्तक को प्रकाशित करने की योजना पन्द्रह वर्ष पूर्व अ.मु.वि. में बनी थी और प्रो. इरफान हबीब ही उसके प्रेरणास्रोत थे। इकबाल हुसैन लिखते हैं कि 1990 में मुझे इन्डो–यू.एस. एजुकेशन फाउंडेशन और यू.जी.सी. के सहयोग से अध्ययनार्थ अमरीका जाने का अवसर मिला तो प्रो. इरफान हबीब ने मुझे कहा कि वहां जा रहे हो तो जरा न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून में प्रकाशित मार्क्स के भारत सम्बंधी लेखों की भी छानबीन कर लेना। इकबाल हुसैन बताते हैं कि वर्जीनिया विश्वविद्यालय आल्डरमेन लायब्रेरी में जहां मुझे भेजा गया था, न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून की 1851 से 1862 के कालखंड की फाइलें और माइक्रो फिल्म मौजूद थी, इसलिए मेरा काम आसान हो गया। पर वे स्वीकार करते हैं कि मार्क्स के लेखों की मूल प्रतियां नष्ट हो चुकी हैं। तब आई.सी.एच. आर. के इस दावे का क्या आधार रह जाता है कि मार्क्स के 1857 सम्बन्धी लेखों की मूल प्रतियां मिल गई हैं। शायद उनके दावे का आधार इकबाल हुसैन का यह 'शोधग्रंथ' ही है। क्योंकि उसके प्रकाशन के लिए आई.सी.एच.आर. ने भारी सहायता दी है (सूचना के अनुसार 70,000 रु.)। इस ग्रन्थ पर प्रो. हबीब प्रारम्भ से अंत तक छाये हुए हैं। प्रारम्भ में भूमिका के रूप में 36 पृष्ठों का उनका एक पुराना लेख, जो उन्होंने 1883 में मार्क्स की मृत्यु के सौंवे वर्ष में माकपा के अंग्रेजी त्रैमासिक 'दि मार्किस्ट' के पहले अंक के लिए लिखा था और जिसका पुनर्प्रकाशन वे 1995 में 'एसेज इन हिस्ट्री' में भी कर चुके थे। इकबाल हुसैन द्वारा संपादित पुस्तक के अंत में भी प्रो. हबीब ने मार्क्स के भारत सम्बन्धी कुछ संदर्भों का भी संकलन किया है।

जनकोष की लूटगाथा

पुस्तक के आर्थिक पक्ष से भी प्रो. हबीब का गहरा संबन्ध है। आई.सी.एच. आर. से प्रकाशन हेतु भारी रकम उन्होंने ही दिलाई होगी। पुस्तक का प्रकाशन जिस 'तूलिका' नामक प्रकाशन गृह से किया है उससे प्रो. हबीब का गहरा रिश्ता लगता है, क्योंकि उनके द्वारा प्रेरित, सम्पादित या लिखित लगभग सभी पुस्तकें पिछले 15–20 साल से तूलिका ही प्रकाशित कर रही हैं। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मार्क्स के लेखों के इस ताजे संकलन के कापीराइट पर भी प्रो. हबीब की जेबी संस्था अलीगढ़ हिस्टोरियन्स सोसायटी का नाम छपा है, जबकि इस ग्रन्थ में प्रस्तुत सामग्री का अधिकांश भाग पहले ही अनेक बार प्रकाशित हो चुका है। आई.सी.एच.आर. से भारी आर्थिक सहायता लेकर भी 308 पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य 495 अर्थात् 500 रुपए रखा गया है। कोई व्यापारिक बुद्धि ही यह सब प्रपंच रच सकती है।

प्रामाणिकता पर सवाल

आईसीएचआर में चल रहे प्रोजेक्ट का पूरा इतिहास ही जनकोष की लूट की गाथा है। उसके विस्तार में न जाते हुए हम जरा प्रो. इकबाल हुसैन के ग्रन्थ की समीक्षा करें कि उसमें संकलित सामग्री की वास्तविकता और प्रामाणिकता क्या है? अपने प्राक्कथन में प्रो. हुसैन स्वीकार करते हैं कि इस पुस्तक में मार्क्स और एंजिल्स के नाम से जो लेख संग्रहीत हैं, न्यूयार्क डेलीट्रिब्यून में उनमें से केवल आठ लेखों पर ही मार्क्स का नाम छपा है शेष पर उनका नाम नहीं छपा है। उनमें से कई लेख ट्रिब्यून के संपादकीय लेख के रूप में प्रकाशित किए गए, जिन पर अमरीकी लेखन की छाप देने के लिए भारी परिवर्तन कर दिए गए। कुछ लेखों को 'संवाददाता द्वारा' कह कर छापा गया।

वे हल्के फुल्के लेखों पर मार्क्स का नाम दे देते थे, गंभीर लेखों पर नहीं। जब मार्क्स ने इसकी शिकायत की तो उन्होंने मार्क्स का नाम छापना बिल्कुल बंद कर दिया। ट्रिब्यून ने मार्क्स के साथ ऐसा अशोभनीय व्यवहार क्यों किया, जबकि इकबाल हुसैन के अनुसार ट्रिब्यून के उस समय के संपादक चार्ल्स ए. डाना की मार्क्स से वैचारिक निकटता थी, वे मार्क्स से 1848 में मिल चुके थे और उनके निमन्त्रण पर मार्क्स ने ट्रिब्यून में लिखना प्रारम्भ किया था। 1862 तक उनके संपादन काल से ही मार्क्स के लेख ट्रिब्यून में प्रकाशित हो पाए। अतः ऐसा सहानुभूतिपूर्ण संपादक मार्क्स के साथ ऐसा अभद्र व्यवहार क्यों करेगा?

स्रोतों की असलियत

इकबाल हुसैन यह भी स्वीकार करते हैं कि ट्रिब्यून के पास भारत के बारे में दो स्रोत अन्य भी थे। एक सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार बेयार्ड ट्रेलर इस पूरे कालखंड में ट्रिब्यून के संवाददाता के रूप में काम कर रहा था और एक बार ट्रिब्यून ने उसे 500 पौंड खर्च करके भारत यात्रा पर भी भेजा था। दूसरा स्रोत था पोलिश मूल का हंगेरियन राष्ट्रवादी फेरेस और लियंस पुल्स्जकी जिसे मार्क्स ने अपना प्रतिद्वन्द्वी बताया है। तो इसका निर्णय कब, किसने, किस विधि से किया कि जिन लेखों पर मार्क्स या एंजिल्स का नाम नहीं है, वे उन्हीं के लिखे हुए थे, क्योंकि इकबाल हुसैन मानते हैं कि उन लेखों की मूल प्रतियां नष्ट हो चुकी हैं। तब क्या इकबाल हुसैन को मार्क्स के साथ ट्रिब्यून का पत्राचार देखने को मिला, क्योंकि वह एक आधार हो सकता था। किन्तु ऐसे पत्राचार का कहीं कोई संकेत नहीं है।

इकबाल हुसैन मानते हैं कि उनके संकलन में प्रस्तुत केवल दो लेखों को छोड़कर, जिन्हें इकबाल हुसैन ने अपनी कल्पना से मार्क्स का मान लिया है और परिशिष्ट में दी गई सामग्री जिसको मार्क्स का कहने की हिम्मत वे भी नहीं जुटा पा

इंस्टीट्यूट ने 1859 में 1857 की क्रांति के बारे में ट्रिब्यून में प्रकाशित सामग्री के लेखक के रूप में मार्क्स और एंजिल्स की पहचान कैसे की, यह एक प्रश्न है।

रहे हैं, के अतिरिक्त सभी सामग्री इससे पहले 1959 में मास्को से सोवियत रूस की सरकार ने 'दि फर्स्ट इंडियन वार आफ इंडिपेंडेंस 1857–1859 के शीर्षक से प्रकाशित की थी। उस ग्रन्थ की भूमिका में कहा गया है कि इस ग्रन्थ का प्रकाशन भारत में 1857–1859 की क्रांति की शताब्दी के आयोजन से प्रेरित है। और, इस सामग्री की खोज सोवियत रूस की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्थापित इन्स्टीटयूट आफ माक्सिज्म–लेनिनिज्म द्वारा की गई है। इस इन्स्टीटूट का इतिहास भी कम्युनिस्ट शोध–प्रणाली के राजनीतिक चरित्र पर प्रकाश डालता है। इस इंस्टीट्यूट की स्थापना 1933 के बाद स्तालिन के काल में हुई और प्रारम्भ में इसे नाम दिया गया 'मार्क्स–एंजिल्स–लेनिन–स्तालिन इंस्टीटूट आफ दि सेन्ट्रल कमेटी–कम्युनिस्ट पार्टी आफ सोवियत यूनियन, किन्तु 1959 में स्तालिन के पतन और ख्रुश्चेव युग के आरंभ के बाद स्टालिन और एंजिल्स के नाम हटाकर उसे इंस्टीटूट आफ मार्क्सिज्म–लेनिनिज्म कम्युनिस्ट दिमाग नाम दिया गया।

अब यहां प्रश्न उठता है कि इस इंस्टीटूट ने 1959 में 1857 की क्रांति के बारे में ट्रिब्यून में प्रकाशित सामग्री के लेखक के रूप में मार्क्स और एंजिल्स की पहचान कैसे की। इसके पहले 1937 में लाहौर से बीपीएल वेदी ने, 1938 में इलाहाबाद से मुल्कराज आनंद और 1943 में रजनी पामदत्ता की भूमिका के साथ मुम्बई से मार्क्स के भारत सम्बन्धी केवल आठ लेख ही प्रकाशित हुए थे क्योंकि ट्रिब्यून में उन पर मार्क्स का नाम छपा था। अतः ट्रिब्यून के अग्रलेखों और संवाददाता रपटों को मार्क्स व एंजिल्स के खाते से किस आधार पर डाला गया। उसके उत्तर में कहा जा रहा है कि मार्क्स और एंजिल्स के पत्राचार में बिखरे संदर्भों के आधार पर यह तय किया गया। संयोग से हमें अपने पुस्तकालय में मार्क्स–एंजिल्स के पत्राचार का 1953 में रूस से प्रकाशित एक संकलन मिल गया। उसमें 1857 से 1862 तक के कालखंड में भारत का कोई उल्लेख नहीं मिलता। जबकि उसके पहले के उसके 8 सन्दर्भ विद्यमान हैं। यह विचित्र लगता है क्योंकि इकबाल हुसैन ने अपनी पुस्तक में इस काल के जो पत्र दिए हैं उनमें दो तीन पत्र लम्बे और महत्त्वपूर्ण हैं। अतः इस पत्राचार की वास्तविकता की खोज होना आवश्यक है। मार्क्स की मृत्यु 1883 में इंग्लैंड में हुई। उनका अधिकांश पत्राचार और लेखन जर्मन भाषा में हुआ। रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1917 में हुई। मार्क्स–एंजिल्स का पत्राचार वहां कब कैसे पहुंचा? उसके कुछ अंशों का पहले प्रकाशन 1933 में और फिर 1953 में हुआ। सोवियत रूस से इतिहास के विकृतिकरण के जो उदाहरण अब सामने आ रहे हैं, उनको देखते हुए यह सब खोज बहुत आवश्यक है। सोवियत रूस को 1957 के बाद ही 1857 की क्रांति सम्बन्धी सामग्री प्रकाशित करने की इच्छा क्यों पैदा हुई? और, इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत का कम्युनिस्ट दिमाग अभी भी मार्क्स का बंदी क्यों बना हुआ है, उससे आगे क्यों नहीं सोच पाता? वह अभी मार्क्स का ही तोता रटन्त क्यों करता रहता है? 'प्रगतिवाद' और 'वैज्ञानिकता' का ढ़िढोरा पीटते हुए उन्नीसवीं शताब्दी का ही बन्दी क्यों है? ❖

खुदरा व्यापार में विदेशी निवेश घातक

खुदरा बाजार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रवेश जहां रोजगार का दोतरफा नाश करेगी वहीं इससे सामाजिक विषमता भी काफी बढ़ जाएगी।

■ गिरीश अवस्थी*

आजकल खुदरा बाजार में विदेशी पँजी निवेश की वार्ता जोरों पर है। कई बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में खुदरा बाजार में प्रवेश करने के लिये भारत की कुछ कम्पनियों से समझौता भी किया है। अमरीकी कम्पनी वाल मार्ट ने भारत को पहले ही वर्ष में 50,000 करोड़ रुपये तक के निवेश की बात कही हैं। इसके अलावा टेस्को, कैरीफोर और कारगिल जैसी विदेशी कम्पनियां भी खुदरा बाजार हेतु अपने पांव भारत में पसारने को तैयार बैठी हैं। इनका सालाना कारोबार कई लाख करोड़ रुपये का होता है। हम सबके सामने प्रश्न यह है कि क्या खुदरा बाजार में प्रवेश करने से भारत का खुदरा व्यापार सुरक्षित रह पायेगा। खुदरा व्यापार से जुड़े हुए 12 करोड़ लोग भारत में रहते हैं, इससे इनके परिवार की रोजी–रोटी चलती है। क्या इन विदेशी कम्पनियों के आने से ये खुदरा व्यापारी बेकार नहीं हो जायेंगे अथवा कितनों को रोजगार मिलेगा, यह एक मूलभूत प्रश्न हम सबके सामने है। खुदरा बाजार के विषय में हमारे देश में विशेषज्ञों का कहना है कि हम भारतीय खुदरा व्यापार की तुलना अमरीका या यूरोप के खुदरा बाजार से नहीं कर सकते। गणना के अनुसार हमारे देश में लगभग 1.20 करोड़ खुदरा वस्तुओं की दुकानें हैं। हम उन खुदरा व्यापारियों की गणना नहीं कर रहे, जो अपने ठेलियों पर स्टेशन, बस स्टॉप, सिनेमाघरों, बाजारों या घरों–घरों में फेरी लगाकर व्यापार करते हैं। हमें इस प्रकार के रेहड़ी लगाने वालों की चिंता करनी होगी। इनका भविष्य क्या होगा यह देश के राजनीतिज्ञों को सोचना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि इन विदेशी कम्पनियों का लक्ष्य उच्च वर्ग है। पर हम यह कैसे भुला सकते हैं कि इन विदेशी कम्पनियों का लक्ष्य एक मात्र उस देश का बाजार रहता है। भारतीय जीवन बीमा निगम के क्षेत्र में उसका एकाधिकार छीनकर गत तीन सालों में इन विदेशी कम्पनियों ने 30 प्रतिशत की भागीदारी हासिल कर ली। खुदरा बाजार में उतरने वाली कम्पनियों का काम तो और भी सरल होगा क्योंकि यहाँ का 90 प्रतिशत करोबार असंगठित क्षेत्र के जरिए होता है, जिस पर विदेशी कम्पनियां तुरन्त हावी हो जायेंगी। हमारे देश के उद्योग व वाणिज्य मंत्री कहते हैं कि अपने देश के खुदरा व्यापारियों की रक्षा के लिये सरकार नीतिगत उपाय करेगी, ताकि खुदरा बाजार में संतुलन बना रहे।

हमारे देश में खुदरा बाजार की दुकानों का औसत दायरा 20 गज का है, जबकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का यह दायरा कम से कम 500 गज का होता है। हमारे देश की खुदरा दुकानों में काम करने वालों का औसत 10–12 आदमियों का है, वहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करने वाले आदमियों का औसत 4–5 है। वालमार्ट विदेशी कम्पनी ने अमरीका में ही 75 प्रतिशत खुदरा कारोबार पर कब्जा कर रखा है तथा उसका वहाँ कारोबार 25 लाख करोड़ रुपयों से ज्यादा है। वहां वालमार्ट कम्पनी ने लगभग 50 लाख लोगों को रोजगार दिया है। इसकी तुलना में भारत में खुदरा बाजार का कारोबार लगभग 4 लाख करोड़ रुपये का है तथा यहां रोजगार 4.5 करोड़ लोगों को मिला हुआ है। मैकेजी की रिपोर्ट के अनुसार वालमार्ट ने यदि इस देश में 1000 लोगों को रोजगार दिया तो खुदरा व्यापार में लगे 15000 लोगों की रोजी–रोटी छिन जाएगी। मैकेजी का यह भी कहना है कि भारत आरम्भिक

*लेखक भारतीय मजदूर संघ के अध्यक्ष हैं।

चरण में विदेशी निवेश आकर्षित कर सकता है, लेकिन आगे इसकी आशा नहीं है। वालमार्ट कम्पनी जो भारत के खुदरा व्यापारियों के लिए सब्जबाग दिखा रही है, वह तमाम विकासशील देशों यथा–हांगकांग, इंडोनेशिया, जकार्ता, जर्मनी, दक्षिण कोरिया आदि देशों में अपने कर्मचारियों की अनदेखी करने के कारण अथवा लोगों की जरूरतों की आपूर्ति न करने के कारण संक्रमण काल से गुजर रही है। अमरीका में ही गरीब स्तर के लोगों का जीना मुश्किल हो गया है।

लासएंजिल्स व न्यूयार्क, ऐसे बड़े शहरों में छोटे–छोटे खुदरा व्यापारी हैं, उनके दबाव के कारण ये कम्पनियां अपना रिटेल शाप नहीं खोल पा रही हैं। अमरीका व यूरोप में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा खुदरा बाजार कब्जाने के बाद उनकी निगाह भारत व चीन के बाजारों पर है परन्तु चीन में उन्हें सापेक्ष परिणाम नहीं मिल पा रहा। कारण इसका यह है कि चीन अपने देश के किसानों को पर्याप्त सब्सिडी देता है तथा चीन में व्यापारिक कानूनों में ज्यादा लचीलापन नहीं है, इस कारण कीमतों के बारे में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का चीन के बाजार में टिकना कठिन है। अतः इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपना सारा ध्यान भारत की ओर लगाया है।

यह बात तय है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारत में खुदरा बाजार में भारतीय व्यापारियों के साथ उतरेंगी, यथा–भारती समूह ने वालमार्ट से समझौता किया है। अब रिलायन्स कम्पनी भी खुदरा बाजार में अपना पैर जमाना चाहती है, लेकिन निर्णायक भूमिका में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां ही रहने वाली हैं। जो कम्पनियां भारत के खुदरा बाजार में प्रवेश कर रही हैं उनका स्वरूप इतना बड़ा है कि कई तो भारत का पूरा खुदरा बाजार खरीदने की क्षमता रखती हैं। कुछ भारतीय दिग्गज भी इस क्षेत्र में उतर रहे हैं। इसके कारण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। हमारे देश के उद्योगपतियों का कहना है कि भारत का निगम क्षेत्र इतना विकसित हो चुका है कि वह विदेशी कम्पनियों को टक्कर देने की स्थिति में है।

परिस्थिति यह है कि छोटा खुदरा व्यापारी अपने आपको कैसे बचा पायेगा? मामला विदेशी कम्पनियों की प्रतिस्पर्धा का है। सरकार कुछ समय तक अपने खुदरा व्यापारियों को संरक्षण दे सकती है, बाद में तो खुला मैदान बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिये है। जिसमें ताकत होगी वह टिकेगा, जिसमें ताकत नहीं होगी वह मैदान छोड़कर भागेगा। हमारा दृष्टिकोण यह है कि अपनी जरूरतों व हितों को देखकर विदेशी निवेश को आकर्षित करना चाहिये, इस विषय पर आंख बंद करके या किसी के दबाव में नहीं आना चाहिये। देश में गत डेढ़ दशक से वैश्वीकरण का नतीजा अब सामने आने लगा है। वैश्विक अर्थव्यवस्था ने विकासशील राष्ट्रों का कल्याण न कर, वहां के प्राकृतिक संसाधनों, सस्ते श्रम व रोजगार के नाम पर श्रेष्ठ प्रतिभाओं का दोहन किया है। विदेशी कम्पनियों के खुदरा बाजार में आने के कारण समाज में विषमता की खाई और बढ़ेगी। ❖

मानवता अभी जीवित है

रेलवे स्टेशन का प्लेटफार्म। इंजन ने सीटी दी। गार्ड ने हरी झण्डी लहराई और गाड़ी सरकने लगी। धीरे–धीरे गति तेज होने लगी। कुछ यात्री चढ़कर अन्दर गए। भीड़ अधिक थी अतः कुछ पाँवदान पर पैर जमाए लटके थे। एक बूढ़ा भी अपनी दुर्बल उँगलियों के दरवाजे की छड़ को पकड़े लटका था, इसी प्रयास में कि शायद अन्दर जा सके। मरियल सी सूखी वृद्ध काया को दरवाजे का लोहदण्ड कब तक थामे रहेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता।

उसकी निस्तेज आँखें देख रही थीं। एक–एक को परख रही थीं। शायद किसी को तरस आ जाए और उसे अन्दर घुसने की राह मिल जाये। ऐसा नहीं था कि डिब्बे के अन्दर बिल्कुल जगह नहीं थी। कोई पैर फैलाए बैठा था, किसी ने सामान सीट पर ही जमा रखा था। भावनाशून्य निष्ठुरों का व्यवहार इससे अधिक हो भी क्या सकता है। संकीर्ण मनोवृत्ति का शिष्टता, शालीनता, परदुखःकातरता से क्या रिश्ता? ये गुण तो मानवों के लिए हैं। फिर रेल के डिब्बे में घुसे ये सब कौन हैं? होंगे कोई, पर कम से कम मानव तो नहीं। बूढ़े की आँखें अभी निराश नहीं हुई थीं। वह ताक रही थीं किसी इन्सान को।

इतने में खिड़की के सहारे बैठे नवयुवक को हवा में लहराते कपड़े खिड़की के बाहर दिखे। उसने अपने साथी को कहा चल खड़की पर कोई लटका है। दोनों भीड़ को चीरते हुए खिड़की तक पँहुचे। बूढ़ा अभी भी जैसे–तैसे लटका हुआ था। शरीर की सारी ताकत उँगलियों में निचोड़कर लाने के बाद भी अब दरवाजा थामने की दम नहीं बची थी। वह गिरने ही वाला था कि नवयुवक की बलिष्ठ बाँहों ने उसे खींच लिया और जाकर सीट पर बैठाया। उसकी जान में जान आई। सजल नेत्रों से कई बार युवकों की ओर देखा, मानो स्वयं को विश्वास दिलाना चाहता हो कि मानवता अभी जीवित है। उसके रोम–रोम से युवकों के प्रति आशीर्वाद झर रहा था। वे दोनों नवयुवक थे भगतसिंह और राजगुरु।

अहिंसा, सत्याग्रह और सर्वोदय

गांधी के अहिंसा का सिद्धांत केवल मांसाहार और शाहाकार तक सीमित नहीं है, अप्रिय वचन और किसी मन को ठेस पहुंचाने को भी वे हिंसा मानते थे।

■ **दीपक कुमार सेन***

विश्व आज 'भूमंडलीकरण' की गिरफ्त में है। 'ग्लोबल विलेज' जैसे लोक लुभावन आदर्शवादी शब्द बहस के बीच हैं। ऐसे समय में गांधी का जिक्र करना थोड़ा अटपटा लग रहा होगा। मगर यह गांधी दर्शन पर बात करने का करने का सर्वोत्तम समय है। क्योंकि गांधी आधुनिकता के विरोधी रहे और आज हम पर 'उत्तरआधुनिकता' हावी है। गांधी अपनी पहचान के साथ एक दूसरे के पूरक और एक दूसरे के लिए अनिवार्यता को एक विश्व का पर्याय मानते रहे, पर वर्तमान विश्व ग्राम की करने का संकल्पना की गयी है, यह तो शुद्ध रूप से सबकी अस्मिता का हरण और बलशाली राष्ट्रों के आर्थिक उपनिवेश के विस्तार की साजिश है। खैर इसे नियति का क्रूर मजाक समझ लें तो भी गांधी के तरकश में अहिंसा, सत्याग्रह और सर्वोदय जैसे अमोघ अस्त्र थे, जिनका इस्तेमाल स्वराज की प्राप्ति के बाद राष्ट्रों की प्रगति में बखूबी हो सकता था। मगर गांधी जी असहाय व एकाकी हो गये और उनके अस्त्र अनुपयोगी मान लिये गये। सत्याग्रह के द्वारा देश को भ्रष्टाचार के दलदल में फंसने से बचाया जा सकता था, वहीं सर्वोदय से देश के सभी वर्गों को समानता का अधिकार देकर असमानता को खत्म किया जा सकता था।

अहिंसा के विषय में गांधी जी ने लिखा है, 'जब कोई मनुष्य यह कहता है कि मैं अहिंसा परायण हूँ, तब उससे आशा की जाती है कि यदि उसे कोई हानि पहुंचाये तो वह उस पर क्रोध न करे, उसका नुकसान न चाहे बल्कि उनकी भलाई ही चाहे, न वह उनके प्रति अनर्गल प्रलाप करेगा और न उसे किसी तरह की शारीरिक चोट ही पहुंचायेगा।... अंहिसा का क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू शास्त्र, क्या बाइबल और क्या कुरान, सब जगह मुझे तो यही दिखाई पड़ा है।' साथ ही वे लिखते हैं कि ''अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इस ओर स्वभावतः परंतु अनजाने बढ़ रही है.... आज की अवस्था में तो हम कुछ अंशों में मनुष्य और कुछ अंशों में पशु हैं। हम घूँस के बदले घूँसा जमाते हैं, ऐसा करते हुए दांत पीसते हैं और ऊपर से अपने दर्प और अज्ञान के वशीभूत होकर इसे मनुष्य जाति के अस्तित्व को सचमुच सार्थक बनाना तक कह डालते हैं। हम ढोंग रचते हैं कि प्रतिहिंसा मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति है और इसके बिना काम ही नहीं चल सकता।.... प्रतिहिंसा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें न जाने कितने नियमों और उपनियमों के पालन का ध्यान रखना पड़ता है।' मौलाना अबुल कलाम ने 'इंडिया विन्स फ्रीडम' में लिखा है कि गांधी जी ने असहयोग का कार्यक्रम पेश किया। उन्होंने कहा अब ज्ञापनों और प्रतिनिधि मंडलों का जमाना गुजर गया है। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि तमाम सरकारी अलंकरण वापस कर दिए जाएं, अदालतों और मदरसों का बहिष्कार किया जाए, अंग्रेजों की सरकारी नौकरी कर रहे भारतीय नौकरियों से इस्तीफा दे दें। असहयोग के प्रस्ताव में मौलाना अबुल कलाम को टॉलस्टॉय का 1901 में अराजकतावादियों के नाम प्रकाशित खत याद आया, जिसमें उन्होंने हिंसा के रास्ते को गलत बताया था। क्योंकि हिंसा के प्रत्युत्तर में तेजी से प्रतिहिंसा होती है। गांधी जी के अहिंसा का सिद्धांत केवल मांसाहार और शाकाहार तक सीमित नहीं है। गांधी जी ने तो अप्रिय वचन और किसी मन को ठेस पहुंचाने को भी हिंसा के दायरे में रखा है। अतः गांधी जी का अंहिसा क्षेत्र काफी व्यापक है, जिसका पालन गांधी जैसा कर्मयोगी, ध्यानयोगी, संत और महात्मा ही

*** लेखक पत्रकारिता से जुड़े हैं।**

कर सकता है। दैनिक जीवन में अहिंसा का पालन करना असंभव तो नहीं है, मगर दुष्कर अवश्य है। जिनको यह अटपटा लग रहा हो वे एक बार सोचें कि जब कोई रिक्शा उनकी कार या स्कूटर से टकराता है, तो कितने लोग ऐसे हैं जो रिक्शे वाले को दांत पीसते घूरेंगे नहीं अपितु क्षमायाचना करके आगे बढ़ जायेंगे?

'सत्याग्रह' को यदि अहिंसा पर तरजीह दी जाती तो शायद श्रेयस्कर होता, मगर सत्याग्रह को हमने आजादी के महासमर के बाद अनुपयोगी मान लिया। जबकि इसे गांधी ने कमजोर आदमी के सबल अस्त्र के रूप में प्रयोग किया था। सत्याग्रह भ्रष्टाचार से निपटने का सबसे कारगर उपाय हो सकता है, यदि हमने इसे अपनाया होता तो शायद भ्रष्टाचार के दावानल में न फंसे होते। गांधी के अनुसार 'स्वाभाविक रूप से मैं सत्यशील हूं पर आवश्यक रूप से अहिंसक नहीं, मेरा सारा दर्शन इसी में आ जाता है। इसे आप गांधीवाद न कहें, क्योंकि इसमें कोई वाद नहीं है।' सत्याग्रह का आरंभ गांधी ने अपने घर से किया था। पत्नी की दृढता व उग्रता के सामने गांधी जी की जब एक न चल सकी तो उन्होंने सत्याग्रह के सनातन विचार का प्रयोग किया। कालांतर में घर की दहलीज से बाहर निकालकर इस अनोखे अस्त्र से उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप को विश्व के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के पंजे से मुक्त कराया। वर्तमान समाज में ऐसे कितने लोग हैं जो सत्याग्रह से परिचित हैं? अहिंसा पूजने की चीज है, जबकि सत्य जीवन जीने की कला है। प्रश्न उठता है कि सत्याग्रह को हम क्यों भूल गये? शायद उत्तर प्रेमचंद ने लिखा है – 'महात्मा गांधी ने कांग्रेस के नेताओं पर सत्याग्रह के सिद्धांत को गलत रूप में जनता तक पहुंचाने का इल्जाम लगाकर व्यर्थ ही उनकी दिल–शिकनी की है। महात्मा जी को आज से तेरह साल पहले सोच लेना चाहिए था कि जिन लोगों के हाथ में हम यह अमोघ अस्त्र दे रहे हैं, वे

'सर्वोदय' का सीधा सा अर्थ है कि सभी वर्गों का उत्थान हो और समाज में व्याप्त असमानता समाप्त हो जाये। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' सर्वे सन्तु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी सोच वाली भारतीय संस्कृति में सर्वोदय का सिद्धांत सनातन है। पाश्चात्य विचारक रस्किन और टॉलस्टाय में भी सर्वोदय के दर्शन होते हैं।

इसे चला भी सकते हैं या नहीं?... क्या महात्मा जी ने उस वक्त यह समझा था कि ये सभी देवता हैं? गांधी जी ने 'सत्य के प्रयोग' में अहिंसा को सत्याग्रह का ही एक अस्त्र माना है।

'सर्वोदय' का सीधा सा अर्थ है कि सभी वर्गों का उत्थान हो और समाज में व्याप्त असमानता समाप्त हो जाये। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' सर्वे सन्तु निरामया सर्वे भद्राणि पश्यन्तु' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी सोच वाली भारतीय संस्कृति में सर्वोदय का सिद्धांत सनातन है। पाश्चात्य विचारक रस्किन और टॉलस्टाय में भी सर्वोदय के दर्शन होते हैं। गांधी में दिखाई देता है, मगर इसका प्रयोग होना अभी बाकी है। गांधी चाहते थे कि विश्व में रंग, भाषा, जाति, संकीर्णता, अमीर–गरीब, शोषक–शोषित, वर्ग उच्चाभिमान से रहित हों। विचारधाराओं का टकराव, ध्वजों के तले बढ़ते उपनिवेश, सेनाओं का आतंक, सारे भेद न केवल समाप्त हों अपितु मानव के बीच खड़ी की गयी हर दीवार गिरा दी जाये। साम्यवादी विचारधारा से केवल सर्वहारा वर्ग का उत्थान होता है, जबकि पूंजीवादी विचारधारा में केवल पूँजीपतियों का विकास संभव है। वहीं सर्वोदय के सिद्धांत में समाज के सभी वर्गों का उत्थान संभव है। गांधी का सर्वोदय केवल आर्थिक उत्थान तक सीमित नहीं था, वे मानते थे कि अमीर आदमी नैतिक रूप से पतित है और गरीब आदमी आर्थिक रूप से कमजोर है। दोनों वर्गों का उत्थान किये बिना सामाजिक समता की परिकल्पना बेमानी है। अक्टूबर 1921 के 'यंग इंडिया' में महात्मा गांधी ने लिखा है – 'मैं अस्पृश्यता उन्मूलन को स्वराज प्राप्ति की अनिवार्य शर्त मानता हूं। दूसरों को गुलाम बनाकर रखने वाले हम लोगों को अपनी गुलामी को लेकर झगड़ने का कोई अधिकार नहीं है, यदि हम खुद अपने गुलामों को बिना शर्त आजाद करने को तैयार नहीं हैं।...यदि हिन्दू अपने पवित्र धर्म पर अस्पृश्यता का कलंक लगा रहने देंगे तो वे न तो स्वतंत्रता के योग्य होंगे और न स्वतंत्रता प्राप्त कर सकेंगे। और चूंकि मुझे हिन्दू धर्म अपने जीवन से अधिक प्रिय है। इसीलिए यह कलंक मेरे लिए असह्य बोझ हो गया है। मैं अपने को सनातनी हिन्दू कहता हूँ, अतः कह सकता हूँ कि जो हिन्दू उच्चता के कारण, दूसरे के साथ भोजन करने से इंकार करता है वह अपने धर्म को गलत ढंग से प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा मालूम पड़ता है, यदि दुर्भाग्यवश आज हिन्दू धर्म केवल खाने और न खाने तक ही सिमट गया है।'

गांधी भी मनुष्य ही थे, और उनकी सोच को भी चुनौती दी जा सकती है और दी भी जानी चाहिए। अगर परिष्कार की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है तो कोई भी विचार साम्प्रदायिक हो जाता है। यदि उनके विचारों को एक संप्रदाय होने से बचाना है तो निरंतर संवाद और टकराहट बनी रहनी चाहिए। गांधी एक प्रयोगधर्मी व्यक्ति थे, प्रयोग का अर्थ ही एक निरंतर प्रक्रिया है। चाहे ये प्रयोग सत्य के ही क्यों न हों? गांधीजी स्वयं कहते हैं कि 'मैं कोई नई बात बताने नहीं जा रहा हूँ, सत्य और अहिंसा तो भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं।' ❖

स्वदेशी जीवनचर्या में वैज्ञानिकता

परंपरागत रीति रिवाजों एवं चर्चाओं में यदि वैज्ञानिकता का पुट हो तो उसे स्वीकार करना उचित एवं आवश्यक है।

■ **गजेन्द्र देव शर्मा***

स्वदेशी जीवन पद्धति है। हमारी परम्पराओं के विकास के पीछे ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'' का भाव निहित है। यही भाव देश को विकट कठिनाइयों से उबारता रहा है। स्वदेशी जीवन की वैज्ञानिकता हमारे ऋषियों के द्वारा प्रत्यक्ष जीवन व्यवहार शैली तथा परम्पराओं के रूप में समाज को दी गयी है।

भारतीय जीवन पद्धति रीति रिवाज एवं परम्पराओं के सतत प्रवाह से कायम हुई है। विज्ञान के बढ़ते कदम से भी स्वदेशी जीवन पद्धति, जिसे सनातन धर्म भी कहते हैं – वैज्ञानिक कसौटियों पर खरी उतरी है। आधुनिकता की चकाचौंध में कुछ लोग अज्ञानतावश परम्पराओं को पिछड़ेपन का प्रतीक मानकर उसके तिरस्कार से नहीं चूकते। दर असल हिन्दू जीवन पद्धति ही स्वदेशी जीवन पद्धति है। हमारी परम्पराओं के विकास के पीछे ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'' का भाव निहित है। यही भाव देश को विकट कठिनाइयों से उबारता रहा है। स्वदेशी जीवन की वैज्ञानिकता हमारे ऋषियों के द्वारा प्रत्यक्ष जीवन व्यवहार शैली तथा परम्पराओं के रूप में समाज को दी गयी है। इसके कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं:–

हिन्दू जीवन पद्धति में पांच वृक्षों – पीपल, बरगद, गूलर, पाकड़ एवं आँवले को महत्त्वपूर्ण श्रेणी में रखा गया है। विषम समय में इसकी वैज्ञानिकता सिद्ध हुई है। पीपल वृक्ष के दूध/रस में कैल्शियम ऑक्जेलेट होती है। यही कारण है कि 1984 की भोपाल गैस त्रासदी में रिसे आइसो सायनाइड जैसे अतिविषाक्त गैस के प्रभाव को इसने झेला ही नहीं वरन अपने इर्द–गिर्द के पर्यावरण को न्यूनतम क्षति होने दी। परिणामस्वरूप अन्य पेड़–पौधे पत्रविहीन हो सूख गये मगर पीपल का वृक्ष हरा–भरा रहा। पीपल एवं अन्य उपर्युक्त वृक्षों को नहीं काटने एवं सामान्य रूप से नहीं जलाने की मान्यता की वैज्ञानिकता अब समझ में आ रही है।

तुलसी का पौधा हमारे घरों में लगाया जाता है। इस पौधे के सूखने पर परम्परा से इसे जल में (नदी या कुएं) ही डालते रहे हैं। वर्तमान वैज्ञानिक शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि तुलसी के पौधे में ऐस्ट्रेवायडस् पाया जाता है। ऐस्ट्रेवायडस की अधिकता, धरती पर पौधे की सामान्य वर्षा उत्पत्ति में बाधक होती है। सफेदा युकेलिप्टस की पत्तियों में भी एस्ट्रेवायडस पाया जाता है, लेकिन बचाव का कोई उपाय नहीं है। उत्तर दिशा की ओर सिर रखकर न सोना बचपन के दिनों में दादी का यह जबरन पालन करवाना आज वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है, कि पृथ्वी एक विशाल शक्तिशाली चुम्बक है, जिसके उत्तर एवं दक्षिण दो ध्रुव हैं। उत्तर की ओर सिर रखकर सोने से अनेक बीमारियों के जीवाणुओं से लड़ने की क्षमता शरीर में कम हो जाती है, साथ ही कोशिकाओं का तेजी से क्षरण होता है। आज चुम्बक को 35 कोणों पर समायोजित कर विभिन्न रोगों का इलाज चुम्बकीय चिकित्सा के अन्तर्गत किया जा रहा है। महाभारत में भी कहा गया है, युधिष्ठिर आदि के सिर शयन करते समय दक्षिण दिशा की ओर रहते थे।

*लेखक - स्वदेशी जागरण मंच बिहार के विचार मंडल प्रमुख हैं।

ग्लोबल वार्मिंग की चिंता वैज्ञानिकों को अब हो रही है। मशीनों का कम से कम प्रयोग इसी बात की एक कड़ी होगी। नि'सर्ग का उपयोग पर जोर हमारे यहां था। आज पश्चिमी चिन्तन में निःसर्ग के उपभोग पर ध्यान है जो सम्पूर्ण मानवता के लिए खतरा है। ग्लेसियरों का सूखना, नदियों को बरसाती नहीं बनाऐगा, जो बाढ़ को खुला निमंत्रण होगा। यह मानवता के समूल नाश का कारण बनेगा।

अगस्त्यशास्ताम् अवितोदिशंतु।
शिरांसितेषां, कुरुसत्तमानाम्।।

महा (1/194/8–91)

गांवों में रात्रि के अंधेरे में चलते समय लाठी पीटकर आवाज करना व ताली बजाकर चलने की प्राचीन परम्परा रही है। घातक एवं विषैले जन्तुओं से बचने के लिए ऐसा किया जाता था। हमारे पूर्वजों को इस बात की जानकारी रही होगी कि सांप देखकर ही नहीं बल्कि ध्वनि तरंगों पर भी चलते हैं। मनुष्य एवं जानवरों में सामान्य तौर पर कान के तीन भाग (बाहरी, मध्य एवं अन्तः) होते हैं। सरीसृप (सांप वगैरह) में केवल अन्तः कान ही होता है, जो बाहर से चमड़े से ढका होता है। सांप की आंखों में रॉड कोशिकाओं की अधिकता होती है, परिणामस्वरूप दिन में धुंधला देखता है और रात में उल्लू के समान देखता है। यही कारण है कि इसके कान काफी तेज होते हैं।

एक अन्य चर्या है कि भोजन के समय बोलना नहीं चाहिए और भोजन के तुरंत बाद ज्यादा पानी नहीं पीना चाहिए। दरअसल मुंह के भीतर दो नालियां होती हैं (1) मुख नाल जो पाचन क्रिया से सम्बन्धित है एवं (2) श्वसन नाल जो श्वसन क्रिया से सम्बन्धित है। भोजन करते समय बोलने से भोजन का अंश श्वसन नाल में चला जाता है, जो खतरनाक है। इसी प्रकार भोजन के तुरंत बाद अधिक जल पीने से आहार नली में अत्यधिक इंजाइम का स्राव होता है। इससे पाचन पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इंजाइम के तरलीकरण रोकने के लिए ही भोजन के तत्काल जल प्रयोग वर्जित है। उपवास की परम्परा अति प्राचीन है। यह पूर्णतया वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। सिरदर्द, उदर विकार, जुकाम, गले की खरास तथा अन्य साधारण रोगों के लिए एक छोटा उपवास काफी है। उपवास से खून में एसनोफिल का प्रतिशत काफी कम हो जाता है। उपवास से शरीर के सभी तत्वों का प्रतिशत सामान्य हो जाता है। अधिकतावाले तत्व कम और कमी वाले तत्व बराबर मात्रा में शरीर में नियंत्रित हो जाते हैं।

यज्ञ–हवन का महत्त्व 1984 के भोपाल गैस दुर्घटना के समय देखने को मिला था। जिस घर में नित्य हवन होता था, वहां जहरीला आइसो सायनाइड निष्प्रभावी हो गया था। वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार वहां वातावरण में प्लस आयरन की अधिकता हो जाती है। जिस प्रकार व्यक्ति को पौष्टिक पदार्थ खाने से लाभ होता है उसी प्रकार पौष्टिक पदार्थ वातावरण में पहुंचकर असंख्य लोगों को लाभ पहुंचाते हैं। इसी सिद्धान्त को अपनाकर आयुर्वेद के भस्म एवं होमियोपैथी में पोटेन्सी बनायी जाती है। कृषि एक विज्ञान है। फसल चक्र का ज्ञान पूर्व से ही हमारे किसानों को रहा है। वे खेतों में चने के साथ गेहूं, अरहर के साथ तिल एवं मसूर के साथ सरसों की खेती करते थे। चना, अरहर एवं मसूर तीनों नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाले पौधे हैं। इनकी जड़ों के द्वितीयक जड़ों के अग्रभाग में गांठ बनती है जो राइजोबियम की सहायता से वातावरण के नाईट्रोजन को स्थिरीकरण करती है। गेहूँ, तिल एवं सरसों की जड़ें ऊपर ही रहती हैं, जबकि नाइट्रोजन स्थिरीकरण वाले पौधों की जड़ जमीन के भीतर तक जाती है। परिणामस्वरूप बिना पटवन के दोनों फसलें खूब उपजती हैं।

ताम्बे के बर्तन में जल भरकर रखना, रात्रि में छोड़ देना एवं सुबह पीने की महत्ता अब साबित हो रही है। वैज्ञानिक इसे चर्म रोग एवं पेटरोग को समाप्त करने में लाभदायक बता रहे हैं। जल प्लस आयनीकृत हो जाता है, एवं स्वास्थ्यबर्द्धक माना जाता है। हाल ही में लन्दन की एक भोजन प्रदर्शनी में लोहे की कढ़ाई में बनायी गयी झोल(रस)–बड़ी ही पौष्टिक सिद्ध हुई है। वज्ञानिकों ने इसमें लोहे की प्रचुरता के कारण एनिमिया जैसे रोगों से छुटकारे की बात कही है। बीज बोते समय किसान कई प्रकार के बीज बोआई के बाद खर–पतवार से ढंक देते हैं। आज इसके बारे में डार्क रियक्सन एवं लाईट रियक्सन की अलग–अलग पढ़ाई की जाती है। हमारे यहां इसकी जानकारी पूर्व से ही रही होगी। ग्लोबल वार्मिंग की चिंता वैज्ञानिकों को अब हो रही है। मशीनों का कम से कम प्रयोग इसी बात की एक कड़ी होगी। नि'सर्ग का उपयोग पर जोर हमारे यहां था। आज पश्चिमी चिन्तन में निःसर्ग के उपभोग पर ध्यान है जो सम्पूर्ण मानवता के लिए खतरा है। ग्लेसियरों का सूखना, नदियों को बरसाती नहीं बनाऐगा, जो बाढ़ को खुला निमंत्रण होगा। यह मानवता के समूल नाश का कारण बनेगा। हमारे प्राचीन तथ्यों को आधार बनाकर विश्व विकास की ओर अग्रसर है। आज हमें अपनी सांस्कृतिक धरोहरों को संजाने एवं परिपाटियों का संवारने की आवश्यकता है। ❖

धर्म और संस्कृति का अद्‌भुत संगम 'अर्द्धकुंभ'

न्यायालय के सख्त आदेश एवं संत-महात्माओं के आन्दोलन के बावजूद नहीं हुआ सुधार, मैली और प्रदूषित गंगा में ही शुरू हुआ शाही स्नान

■ **स्वदेशी संवाद**

तीर्थ राज प्रयाग (इलाहाबाद) में मोक्षदायिनी गंगा, यमुना और सरस्वती के अद्‌भुत संगम में भारत का दूसरा सबसे बड़ा धर्मसमागम अर्द्धकुंभ मेला पौष मास की पूर्णिमा को अस्सी लाख श्रद्धालुओं के साथ शुरू हुआ, जबकि मेला के अंत तक 8 करोड़ से अधिक लोगों के स्नान में शामिल होने का अनुमान है। शाही स्नान मकर संक्रांति (14–15 जनवरी), मौनी अमावस्या (19 जनवरी और वसंत पंचमी (23 जनवरी) को अपार भीड़ के साथ संपन्न होगा।

दो माह तक चलने वाले इस मेले के पहले दिन ही 20 लाख से अधिक साधु–संतों ने पहुंच कर संगम के अलग–अलग घाटों पर डुबकी लगाकर मेले का श्रीगणेश किया। संगम में सबसे पहले महानिर्वाणी अखाड़ा के साधु संतों ने स्नान किया, उसके बाद निरंजनी तथा बाकी अखाड़ों के साधुओं का स्नान हुआ। साधु–संतों के अलावा इस बार सैकड़ों की तादात में विदेशी सैलानियों ने भी स्नान का आनंद उठाया। विदेशी सैलानी भी अन्य साधु संतों की तरह एक माह तक यहाँ रुकेंगे। स्नान करने वालों में बड़ी संख्या में महिलाएं और बच्चे भी हैं। साधु–संतों द्वारा साल भर से गंगा को मुक्त करने के लिए चलाए जाने वाले आंदोलन का सरकार पर कोई भी असर नहीं हुआ और श्रद्धालुओं को प्रदूषित जल में ही नहाना पड़ा।

हिन्दू धर्म में प्रयाग के अर्द्धकुंभ की महत्ता बहुत अधिक है। धार्मिक मान्यता है कि इस नगरी में कुंभ अथवा अर्द्धकुंभ के दौरान गंगा में स्नान करने से कई जन्मों के पाप धुल जाते हैं, और मोक्ष का द्वार खुलता है। ऐसी मान्यता है कि भगवान राम, सीता और लक्ष्मण ने 14 साल के बनवास के दौरान इसी संगम पर आकर स्नान किया था। महाभारत काल के समय पांडवों ने भी इसी धार्मिक नगरी का भ्रमण किया और संगम पर स्नान किया। जिसके चलते अर्द्धकुंभ का यह मेला पूरे विश्व में सबसे बड़ा आस्था का केन्द्र माना जाता है। हिन्दू मान्यता के अनुसार प्रयागराज जिसे तीर्थराज भी कहा जाता है सबसे बड़ा धार्मिक स्थल है। समुद्र मंथन के दौरान अमृत का जो घड़ा प्राप्त हुआ था, जिसे लेकर देवताओं तथा राक्षसों के बीच हुई लड़ाई के समय घड़े से अमृत निकालकर प्रयाग (इलाहबाद), हरिद्वार, नासिक तथा उज्जैन में गिर गया था। इसीलिए इन चारों स्थानों पर पूर्ण या अर्द्धकुंभ लगता है।

लेकिन कुंभ के इस धार्मिक स्नान में औद्योगिक विकास का विष घुला हुआ है। स्थानीय और आस–पास के प्रमुख औद्योगिक स्थानों का प्रदूषित अवशिष्ट पदार्थ गंगा एवं यमुना में प्रवाहित कर दिया जाता है। जिससे गंगा के प्रवाह में लाल रंग का जहरीला तत्व घुल रहा है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने भी इसका संज्ञान लेते हुए आदेश दिया था कि कुंभ स्नान से पूर्व गंगा को प्रदूषण मुक्त किया जाए। ज्ञातव्य हो कि गंगा में कुंभ स्नान स्थल के पास जैविक ऑक्सीजन की मात्रा (बीओडी) 6 प्रतिशत के आस पास थी। जबकि बीओडी की मात्रा यदि तीन प्रतिशत से उपर हो जाए तो जल मुंह में लेने योग्य नहीं रह जाता है। विकल्प के तौर पर सोचा यह गया था कि नरौरा बांध से आवश्यक मात्रा में पानी का प्रवाह बढ़ाया जाएगा ताकि प्रदूषण स्तर कम हो सके। और कुंभ स्नान आसान एवं सुखद हो। लेकिन नरौरा का पानी अपेक्षित मात्रा में न मिल पाने के कारण गंगा में प्रदूषण का स्तर कम नहीं हुआ। ❖

असमानता एवं पर्यावरणीय संकट का बढ़ता खतरा

''वैश्विक आर्थिक संभावना 2007'' भले ही आर्थिक विकास में मजबूती की बात कर रहा हो लेकिन जिन खतरों का रपट में उल्लेख किया गया है उसे नजरअंदाज करना भारी भूल साबित हो सकती है।

■ **विद्यानंद आचार्य**

पिछले 25 वर्षों की तुलना में अगले 25 सालों में वैश्वीकरण के कारण औसत आय में वृद्धि हो सकती है, एवं विकासशील देश इसमें केन्द्रीय भूमिका निभाएंगे। लेकिन अगर इसका प्रबंधन सतर्कतापूर्वक नहीं किया गया तो आय में असमानता बढ़ेगी और उग्र पर्यावरणीय खतरों का संकट बढ़ेगा। यह भविष्यवाणी एसोचेम द्वारा आयोजित कार्यक्रम में विश्व बैंक द्वारा जारी रपट ''वैश्विक आर्थिक संभावनाएं 2007'' में व्यक्त की गई है।

''वैश्विक आर्थिक संभावनाएं 2007'' के अनुसार इस साल विकासशील देशों में विकास की दर कीर्तिमान स्तर 7 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी। 2007 और 2008 में संभवतः विकास दर धीमी होगी लेकिन फिर भी यह 6 प्रतिशत से अधिक होगी, जो उच्च आय वाले देशों में विकास दर से दोगुनी होगी, जहाँ विकासदर 2.6 प्रतिशत रहने का अनुमान है।

पुस्तक में कहा गया है कि 2006 में दक्षिण एशिया में सकल घरेलू उत्पाद 8.2 प्रतिशत की अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ने का अनुमान है। भारत गैर–कृषि उत्पादों में 10 प्रतिशत से अधिक वृद्धि के बलबूते पर लगभग 8.7 प्रतिशत वृद्धि दर के साथ सकल घरेलू उत्पाद में इस वृद्धि की अगुवाई कर रहा है।

पाकिस्तान में 7.8 प्रतिशत, बांग्लादेश में 6.7 प्रतिशत, नेपाल में आर्थिक गतिविधि मंद होकर 1.9 प्रतिशत रह गई है। श्रीलंका में एक अच्छी उपज, सुनामी पश्चात समुत्थान और पुनर्निर्माण गतिविधि के कारण वृद्धि दर बढ़कर 7 प्रतिशत हो गई है।

दक्षिण एशिया क्षेत्र के लिए विश्व बैंक के विशेषज्ञों का मानना है कि इस क्षेत्र में इस तीव्र वृद्धि दर को आर्थिक सुधारों के कारण बल मिल रहा है जिसने निजी क्षेत्र को बढ़ावा दिया है। लेकिन इस क्षेत्र ने अनेक जोखिमों का सामना भी किया है। विशेषज्ञों ने यह भी कहा कि इस क्षेत्र में बढ़ती हुई असमानता न

केवल गरीबी को कम करने के लिए आर्थिक विकास को कम शक्तिशाली बनाएगी, लेकिन इसके परिणामस्वरूप नए सामाजिक विवाद उत्पन्न हो सकते हैं या मौजूदा विवाद कटु बन सकते हैं।

रपट में दक्षिण एशिया में सकल घरेलू उत्पाद इत्यादि उत्तरोत्तर मंद होने का अनुमान लगाया गया है फिर भी यह 2007 में सुदृढ़ होकर 7.5 और 2008 में 8 प्रतिशत रहेगा।

रपट में पूर्वानुमान लगाया गया है कि वैश्वीकरण से वैश्विक अर्थव्यवस्था 2005 में 35 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर से बढ़कर 2030 में 72 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर हो जाएगी। निश्चित रूप से इस विकास में विकासशील देशों का योगदान होगा। लेकिन कुछ क्षेत्रों, विशेषकर अफ्रीका के लिए और पिछड़ने का खतरा है। इसके अलावा, आय की असामानता अनेक देशों के भीतर बढ़ सकती है, जिससे देशों के बीच असमानता के बारे में मौजूदा चिंताओं में और वृद्धि होगी।

सामान एवं सेवाओं में मौजूदा वैश्विक व्यापार 2030 तक तीन गुना बढ़कर 27 ट्रिलियन अमरीकी डॉलर तक पहुंच सकता है, और उस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था में व्यापार का हिस्सा मौजूदा एक–चौथाई से बढ़कर एक–तिहाई हो जाएगा। मोटे तौर पर आधी आर्थिक वृद्धि विकासशील देशों में होने की संभावना है। विकासशील देश जो केवल दो दशक पहले समृद्ध देशों के आयातों में 14 प्रतिशत उपलब्ध कराया करते थे, आज 40 प्रतिशत की आपूर्ति कर रहे हैं और 2030 तक उनके द्वारा 65 प्रतिशत की आपूर्ति किए जाने की संभावना है।

बाजारों का एकीकरण जारी रहने से पूरे विश्व में नौकरियों पर अधिक प्रतिस्पर्धात्मक दबाव बढ़ेगा। जैसे–जैसे व्यापार का विस्तार होगा और तकनीकें विकासशील देशों को मिलेंगी, पूरे विश्व में अकुशल कामगार और कुछ कम कुशलता वाले व्हाइट कॉलर कामगार – सीमापार से बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा का सामना करेंगी। मौजूदा नौकरियों का संरक्षण करने की कोशिश एवं विस्थापित कामगारों की सहायता करने तथा उन्हें अवसर मुहैया कराने की आवश्यकता होगी। कुल मिलाकर बेरोजगारी बढ़ने का अनुमान है और वर्तमान रोजगार में असंतुलन बढ़ेगा।

रिपोर्ट में चेतावनी दी गई है कि वैश्वीककरण की अगली लहर से 'विश्व के आम आदमी' पर उग्र दबाव बनेगा, जो इस दीर्घकालिक प्रक्रिया को खतरे में डाल सकता है। राष्ट्रों को वैश्विक जनता के कल्याण के मुद्दों – वैश्विक तापमान में वृद्धि, बर्ड फ्लू, विश्व मत्स्य क्षेत्र का ह्रास जैसी प्रमुख चुनौतियों से निपटने में अधिक बड़ी भूमिका निभाने के लिए एक साथ मिलकर कार्य करना होगा।

निष्कर्षतः कहा गया है कि तीव्र वैश्वीकरण की चुनौतियों ने राष्ट्रीय नीतिनिर्माताओं और अतंर्राष्ट्रीय अधिकारियों, दोनों पर नए बोझ लाद दिए हैं। राष्ट्रीय दृष्टि से सरकारों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि गरीबों को शिक्षा, अवसंरचना और विस्थापित कामगारों के लिए सहायता व्यवस्थाओं में गरीब–अनकूल निवेशों के जरिए आर्थिक विकास की प्रक्रिया में शामिल किया जाए। उन्हें कामगारों की सहायता करने और उनके लिए निवेश करने की आवश्यकता है – यह सभी कुछ परिवर्तन का विरोध करने की बजाय उसका समर्थन करते हुए करना होगा अन्यथा सामाजिक संघर्ष बढ़ने से परिस्थितियां विषम हो जाएंगी। ❖

मुरलीधर राव को मातृ–शोक

स्वदेशी जागरण मंच के अखिल भारतीय संयोजक श्री मुरलीधर राव की परम पूज्यनीय माता जी श्रीमती अनुसुइया राव, धर्म पत्नी श्री लिंगाराव का निधन हैदराबाद में दिनांक 8 जनवरी 2006 को प्रातः तीन बजे हो गया। श्रीमती अनुसुइया राव पिछले एक मास से अस्वस्थ थीं और उनका उपचार हो रहा था। उनका अंतिम संस्कार निधन के दिन ही सोमवार को दोपहर दो बजे उनके निवास ग्राम कोरिपल्ली में किया गया। श्रीमती राव अपने पीछे पति श्री लिंगा राव, सुपुत्र श्री मुरलीधर राव, श्री प्रभाकर राव एवं पुत्री श्रीमती सोमपल्ली वसंता सहित भरा–पूरा परिवार छोड़कर गई हैं। स्वदेशी जागरण मंच परिवार की ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शंति प्रदान करें और शोक संतप्त परिवार को सहनशक्ति दें।

देश में किसानों के साथ भेदभाव क्यों : राव

■ स्वदेशी संवाद

स्वदेशी जागरण मंच की ओर से जिला स्तरीय ''विशाल किसान पंचायत'' कार्यक्रम 7 दिसम्बर 2006 को कस्बा बेगूँ में आयोजित किया गया। इस किसान पंचायत को मंच के अखिल भारतीय संयोजक श्री मुरलीधर राव, अखिल भारतीय विचार मंडल प्रमुख डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा, मंच के किसान प्रकोष्ठ के राष्ट्रीय प्रमुख भागीरथ चौधरी, सह प्रान्त संयोजक डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी ने सम्बोधित किया। इस किसान पंचायत में करीब 1000 से अधिक किसान उपस्थित थे।

मुख्य वक्ता श्री मुरलीधर राव ने किसान पंचायत को सम्बोधित करते हुए कहा कि आजादी के साठ वर्ष बीत जाने के पश्चात भी किसानों की स्थिति में कोई ज्यादा सुधार नहीं आया है। किसानों के साथ हमेशा छलावा हुआ है। किसानों की समस्याओं की कोई भी सुनवाई नहीं करता है। श्री राव ने कहा कि शहरों की आलीशान इमारतों व सड़कों को सजाने के लिये बिजली मिल जाती है, लेकिन किसानों को फसल की सिंचाई के लिये बिजली नहीं मिलती है। किसानों को फसल का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। किसानों व पूंजीपति के बीच भी बैंक, लोन देने में भेदभाव करता है। बैंक पूंजीपतियों को 4 प्रतिशत की ब्याज दर से जबकि किसानों को 9.5 प्रतिशत के हिसाब से ऋण देता है। किसान धरती का मालिक होते हुए भी बैंक उसे लोन देने में हिचकिचाता है।

श्री राव ने राजनीतिक पार्टियों पर कटाक्ष करते हुए कहा कि किसी भी पार्टी ने किसानों की सुध नहीं ली। किसानों की आर्थिक स्थिति पर ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि किसानों को गौ पालन एवं पेड़ पौधे लगाकर उनसे खाद बनाकर वानस्पतिक खाद को बढ़ावा देना चाहिये। देशी खाद को बढ़ावा देने, रासायनिक खाद का प्रयोग कम करने की सलाह देते हुए उन्होंने कहा कि रासायनिक खाद से भूमि की उर्वरा क्षमता

किसान पंचायत को संबोधित करते मुरलीधर राव

खत्म हो जाती है।

इस अवसर पर मंच पर उपस्थित किसान प्रकोष्ठ के राष्ट्रीय प्रमुख भागीरथ चौधरी ने कहा कि हमारी संस्कृति खेती प्रधान है। खेती को उत्तम कर्म माना है। लेकिन आज खेती करने वालों की ही स्थिति सबसे ज्यादा खराब है।

मंच के अखिल भारतीय विचार मंडल प्रमुख भगवती प्रकाश शर्मा ने कहा कि आज हर आवश्यक चीजें विदेशों से आयात की जा रही है। जिससे भारतीय किसान को उपज का पूरा दाम नहीं मिल पा रहा है। श्री शर्मा ने कहा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां अब खेती को भी ठेके में लेने वाली है। इस स्थिति में किसानों को अपनी उन्नति के लिए संगठित होकर हक मांगना होगा।

जिला संयोजक एवं अधिवक्ता लालूराम कुमावत ने बताया कि चित्तौड़गढ़ जिले की यह ऐतिहासिक किसान पंचायत किसानों के हितों की रक्षा के लिए संकल्पबद्ध है। इससे पहले ऐसी सभा चित्तौड़गढ़ जिले में कभी नहीं हुई। यह क्षेत्र किसान बाहुल्य होने के साथ–साथ अफीम की खेती का भी प्रमुख क्षेत्र है। जिला संयोजक ने बताया कि इस किसान पंचायत में 85 गांव के करीब 1000 से अधिक किसानों ने भाग लिया। इस विशाल किसान पंचायत की सफलता में सह जिला संयोजक मोहन भट्ट बेगूँ, तहसील संयोजक प्रकाश सुथार बस्सी, तहसील संयोजक नरेन्द्र ब्यास, चित्तौड़गढ़ तहसील संयोजक हेमन्त शर्मा, पारसोली तहसील संयोजक रमेश वैष्णव, कार्यक्रम संयोजक गोपाल धाकड़, सहकार्यक्रम संयोजक शेंलेन्द्र शर्मा सहित कस्बा बेगूँ के गणमान्य नागरिक नेमीचन्द डांगी, सुनिल पगारिया, मोहन लाल पहाड़िया (न.पा. उपाध्यक्ष) पारस जैन (भाजपा अध्यक्ष) कमल किशोर माथुर (भाजपा प्रवक्ता), चन्द्रप्रकाश शर्मा, कैलाश शर्मा (पूर्वचैयरमैन), पुरषोतम दवे, मोहनलाल धाकड़ (मेघनिवास), श्याम लाल पहाडिया, गोविन्द धाकड़ (रायता), शान्तिलाल नागौरी (अध्यक्ष वि.हि.प.), रामावतार माथुर (मंत्री विहिप), शंकर लक्खी, दिलीप जैन, भवानी शंकर कौली, देवीलाल सालवी आदि का सराहनीय सहयोग मिला। ❖

अखंड भारत - हमारा संकल्प

राष्ट्रपति सहित देश के प्रमुख सेनानायकों को 'प्रेम' सिंह शेर का खुला पत्र

पाकिस्तान और बंगलादेश के साथ गुप्त समझौता भारत को इस्लामी राज्य बनाने की साजिश है

■ **आर.पी.दुबे**

पूर्व सांसद एवं विश्व हिन्दू परिषद के केन्द्रीय मंत्री श्री बैंकुण्ठ लाल शर्मा 'प्रेम' सिंह शेर ने महामहिम राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम तथा देश के प्रमुख सेना नायकों को पत्र लिखकर यह चिंता जताई है कि जिस तरह से केन्द्रीय तथा कुछ राज्य सरकारें पाकिस्तान एवं बांग्लादेश सहित मुस्लिम तथा अन्य विघटनकारी तत्वों से गुप्त एवं मौखिक समझौते कर रही है, यह देश की संप्रभुता के लिए खतरा है तथा भारत को इस्लामी राज्य बनाने की साजिश है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा फांसी की सजा पाए संसद पर हमले के प्रमुख आतंकवादी मोहम्मद अफजल को बचाने की कोशिश, इस बात के संकेत हैं कि भारत की एकता और अखंडता अब सुरक्षित नहीं है।

30 दिसम्बर 2006 को दिल्ली में ''अखंड भारत–हमारा संकल्प'' विषय पर अखंड हिन्दुस्थान मोर्चा की ओर से आयोजित कार्यक्रम में उन्होंने हिन्दुओं को सचेत किया कि अगर देश में इसी तरह सब कुछ चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब देश की रक्षा करना असंभव हो जाएगा।

कार्यक्रम के इस मौके पर श्री प्रेम सिंह शेर के अतिरिक्त विश्व हिन्दू परिषद के राष्ट्रीय अध्यक्ष अशोक सिंघल, विहिप नेता विष्णुहरि डालमिया, महान राष्ट्रीय संत योगिराज नरसिंह राव सरस्वती, राष्ट्रीय गोधन महासंघ के संस्थापक व संयोजक श्री विजय खुराना, बजरंग दल के नेता शैलेन्द्र सहित आदि सभी ने एक ही बात कही कि आज देश का हिन्दू संकट में है और इसे बचाना होगा।

विहिप नेता श्री अशोक सिंहल ने अपने संदेश में कहा कि प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है कि इस लड़ाई में बी.एल. शर्मा प्रेम का सहयोग करें विहिप नेता विष्णुहरि डालमिया ने कहा कि अगर इस देश में हिन्दुओं को बचाना है तो एक ही तरीका है कि हिन्दू वोट बैंक खड़ा किया जाए। तभी हिन्दुओं का सम्मान हो सकता है। उन्होंने कहा कि बहुसंख्यक होने के बाद भी हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की उपेक्षा हो रही है, जबकि वहीं पाकिस्तान में मुसलमानों का बोलबाला है।

योगिराज स्वामी नरसिंह राव सरस्वती ने बताया कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई राज्यों में मुस्लिमीकरण हो रहा है। स्वामीजी ने आगाह किया कि अगले 10 साल में पश्चिमी उत्तर प्रदेश की वह हालत हो जाएगी, आज जम्मू कश्मीर की है। संत योगिराज ने कहा कि हर हिन्दू का कर्तव्य है कि बहन–बेटी और गोमाता की रक्षा के लिए आगे आएं।

कार्यक्रम के अंत में राष्ट्रीय गोधन महासंघ के संस्थापक व संयोजक विजय खुराना ने कहा कि प्रेम जी का अखंड भारत का मिशन डॉ. हेडगेवार का ही मिशन है उन्हीं की प्रेरणा है। श्री खुराना ने बताया कि प्रेम जी का जीवन एक आदर्श पुरुष का है और उन का जीवन विलासिता के साथ मेल नहीं खाता। आज उन्होंने जो अंखड भारत का सपना देखा है वह अवश्य पूरा होगा।

राष्ट्रपति सहित सेनानायकों को लिखे पत्र में श्री प्रेम ने कहा है कि परिस्थितियों में अगर कोई इस देश को बचा सकता है तो वह एक मात्र भारत का सशस्त्र रक्षा बल ही है जो एक राष्ट्रवादी संगठन है। यही संगठन भारत के भविष्य की आशा है। नंगा सच तो यह है कि अगर रक्षा बल और भारत का सर्वोच्च न्यायालय नहीं होता तो हिन्दुस्तान कब का खंड–खंड हो चुका होता।

हिन्दू नेता श्री 'प्रेम' सिंह शेर ने पत्र की शुरूआत करते हुए लिखा है कि भारत–पाकिस्तान के बीच नवम्बर 2006 की रक्षा–सचिव स्तर की वार्ता से पहले ही सेना अधिकारियों द्वारा सियाचिन ग्लेशियर – साल्ट्रो रिन (पर्वत श्रृंखला) में स्थित अपनी चौकियों को खाली न करने की घोषणा से सभी देशभक्तों के हृदय में प्रसन्नता की लहर दौड़ी है। इससे यह प्रमाणित हुआ कि भारतीय नागरिकों की गाढ़ी कमाई से खड़ी की गई थल सेना, नौसेना, वायुसेना तथा अर्धसैनिक बल भाड़े की नहीं अपितु राष्ट्रीय सेनाएं हैं। सेनाओं का राष्ट्रीय दायित्व है कि वे राष्ट्र की, राष्ट्रीय सम्मान, की राष्ट्रीय सीमाओं की बाह्य आक्रमणों और हमारे ही धन से पल रहे भीतरी शत्रुओं से सतत रक्षा करती रहे। ❖

अमर शहीद 'बाबू गेनू' के नाम पर मार्ग का नामकरण

''स्वदेशी पथ'' के प्रेरणास्रोत हैं अमर शहीद बाबू गेनू : मदन दास

स्वदेशी आंदोलन के प्रथम शहीद 'बाबू गेनू' हर भारतीय के मन में 'स्वदेशी पथ' का भाव पैदा करने के लिए सदैव प्रेरणा स्रोत रहेंगे। बाबू गेनू स्वतंत्रता की ज्योति हैं, स्वदेशी के लिए उनका बलिदान लोगों के मन में यह भाव पैदा करता है कि स्वतंत्रता ही जीवन का परम लक्ष्य है। स्वतंत्रता, स्वावलम्बन की भावना रखकर ही हम कार्य करें, इसके लिए किसी के दबाव में नहीं आएं, अमर शहीद बाबू गेनू का हम सभी को यही संदेश है।

बाबू गेनू मार्ग शिलापट्ट का अनावरण करते मदन दास एवं उनके अन्य

यह विचार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह मदन दास देवी ने मंगलवार, 12 दिसम्बर 2006 को रामकृष्णपुरम सैक्टर–8 में नई दिल्ली नगर निगम के द्वारा अमर शहीद बाबू गेनू के नाम पर मार्ग का नामकरण समारोह में उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए व्यक्त किए।

अमर शहीद बाबू गेनू मार्ग के नामकरण के उपलक्ष्य में स्वदेशी जागरण मंच के कार्यालय स्थित प्रांगण में आयोजित समारोह में विशिष्ट अतिथि मदन दास देवी ने कहा कि आज वैश्वीकरण की होड़ में व्यापार का अधिकार, पूंजी का अधिकार, कानून को परिवर्तित करने व कराने का अधिकार, लागू करने– करवाने का अधिकार जिस गति व रफ्तार से दौड़ रहा है, ऐसे वक्त में स्वदेशी की रक्षा के लिए शहीद हुए असाधारण देशभक्त को सम्मान देकर दिल्ली नगर निगम सहित जिन लोगों ने भी इसमें सहयोग किया है वे सराहनीय हैं, इसलिए उन सभी का स्वदेशी जागरण मंच और संघ की तरफ से वे उनका अभिनन्दन करते हैं। इस मौके पर संघ के प्रमुख ने दिल्ली में चल रही सीलिंग और इस कारण रोजगार खो रहे व्यापारी, बेरोजगार हो रहे कर्मचारी आदि विषयों पर भी लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि दिल्ली में सीलिंग हो रही है, मॉल खड़े किए जा रहे हैं। रिटेल व्यापार को विदेशी हाथों में बेचने के पीछे एक सोची समझी साजिश काम कर रही है। छोटे व्यापारियों से दुकान चलाने का अधिकार छीना जा रहा है, बिक्री के लिए बड़े–बड़े क्षेत्र बनाए जा रहे हैं।

विदेशी व अंतर्राष्ट्रीय कानून के कारण खेती बेचने का कार्य चल रहा है। सामान्य किसानों की खेती को सरकार अधिगृहित कर रही है, जिससे विकास के नाम पर विषमता का भाव पैदा किया जा रहा है। इससे अमीर और अमीर होते जाएंगे, गरीब और गरीब। उन्होंने कहा कि आर्थिक व सांस्कृतिक आक्रमण के जरिए एक प्रकार का साम्राज्यवाद खड़ा हो रहा है। हर विषय की चिंता करना, आकलन कर सही बात का समर्थन और गलत बात का विरोध करना प्रत्येक देशभक्त नागरिक का प्रथम कर्तव्य है, अमर शहीद बाबू गेनू का बलिदान इसी बात की याद दिलाता है।

स्थानीय निगम पार्षद हिरेन टोकस ने अमर शहीद बाबू गेनू मार्ग के नामकरण के लिए नगर निगम सहित स्वदेशी जागरण मंच का आभार व्यक्त करते हुए कहा कि शहीदों के नाम को याद रखने के लिए हम भी कुछ काम आए ये हमारा सौभाग्य है। स्वदेशी जागरण मंच दिल्ली प्रांत के संयोजक डॉ. अश्विनी महाजन ने अमर शहीद बाबू गेनू के संबंध में विस्तृत जानकारी देते हुए कहा कि हमारे देश में शहीदों को याद करने की विशेष परम्परा रही है, इस दृष्टि से इस कार्यक्रम का विशेष महत्त्व है। उन्होंने कहा कि सौभाग्यवश जिस मार्ग का नामकरण बाबू गेनू के नाम पर किया गया है, स्वदेशी जागरण मंच का केन्द्रीय कार्यालय भी उसी मार्ग पर स्थित है।

अमर शहीद बाबू गेनू के नाम पर मार्ग के नामकरण समारोह में नगर निगम के डिप्टी कमिश्नर सुरेश भंडारी, निगम पार्षद कुंवर सेन, मोती नगर के विधायक सुभाष सचदेवा, पूर्व निगम पार्षद राधेश्याम शर्मा, सनातन धर्म मंदिर के पदाधिकारी भोला नाथ विज, स्वदेशी जागरण मंच एवं संघ के अनेक कार्यकर्ताओं सहित क्षेत्र के सैकड़ों गणमान्य व्यक्तियों ने बाबू गेनू के चित्र पर श्रद्धासुमन अर्पित कर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। ❖

गोवंश का आरक्षण ही राष्ट्रधर्म

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में गाय का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आवश्यकता है गोवंश की रक्षा कर इसके टिकाऊ उपयोग द्वारा राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की जाए।

■ पं. भवानी शंकर

भारत के पिछड़े वर्ग की प्रगति का मापदंड देश की 74 करोड़ ग्रामीण जनता की समृद्धि को मानना होगा। उसमें भी 2 से 5 हेक्टेर असिंचित भूमिधारक छोटे किसान होंगे। भारतीय गाय किसानों को युगों से खेती के लिये बैल, भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने वाली अतुलनीय 13 व 16 खनिज द्रव्यों वाली गोबर खाद व कीटनियंत्रक गोमूत्र की पूर्ति द्वारा किसान को जीने के लिये आवश्यक अनाज, दलहन और तिलहन उपलब्ध कराती है। मानव के लिये अनुपयोगी कडबी, भूसी, चुन्नी, खली जैसे बचे खुचे पदार्थ खाकर अमृततुल्य दूध, धी और प्रदूषण मुक्त खाद्यान्न देकर किसान की चतुर्दिक प्रगति साधने का अतुलनीय कार्य करते आई है। भारतीय गाय आज के विज्ञान युग में किसानों के लिये भी सुखी, समृद्ध व स्वावलंबी बनाने वाली साक्षात कामधेनु सिद्ध हो गई है।

दिल्ली के आई.आई.टी. में ग्रामीण व उत्तर प्रदेश के गोबर गैस संशोधन केन्द्र ने सिद्ध किया है कि एक गाय से एक वर्ष के गोबर से 225 लीटर पेट्रोल के बाराबर मिथेन गैस मिलती है। गोरखपुर के प्रहलाद ब्रह्मचारी के नेतृत्व में कानपुर गौशाला व गुजरात की धोराजी गउशाला ने 8 किलो वजन का ईंधन गैस सिलेंडर का उत्पादन भी शुरू कर दिया है। श्री अरूण फिरोदिया ने इंडियन एक्सप्रेस में लिखा है कि सन 2003–04 में भारत को 80 लाख टन पेट्रोल की आवश्यकता थी। एक गाय के एक वर्ष के गोबर गैस से 225 लीटर पेट्रोल के हिसाब से गांवों की 74 करोड़ जनता की बिजली की पूर्ति 8.5 करोड़ गायों के गोबर से हो सकती है। इतना ही नहीं 20 करोड़ गायों के गोबर गैस की चूने के पानी से संशोधित विशुद्ध मिथेन गैस से पूरे देश के पेट्रोल, डीजल से चलने वाले वाहनों के ईधन, चूल्हे की ईधन गैस व बिजली आदि की पूर्ति सहज कर सकते हैं। ऊर्जा पूर्ति के बाद बचे हुये 5 करोड़ टन जैविकखाद से दस लाख हेक्टेर जमीन की उत्पादन क्षमता भी बढ़ती रहेगी। देश के 6 लाख 27 हजार गांवों में से प्रत्येक गांव में 50 परिवार ऐसे मिलेंगे जिनके पास कम से कम 4 गाय व 2 बैल होंगे। जिससे देश की ऊर्जा पूर्ति सहज हो सकती है।

इसके साथ ही रतनजोत, नीम, करंज, मोह ये तेल उत्पादक वृक्ष भी हैं। हमारे देश की गत वर्ष 3.8 करोड़ टन डीजल की आवश्यकता की पूर्ति केवल 1.5 करोड़ हेक्टेर पड़ती जमीन पर ये बायो डीजल वृक्ष लगाकर कर सकते हैं। देश में कुल 2.5 करोड़ हेक्टेर पड़ती जमीन का उपयोग तेल वृक्ष लनाने में कर लें तो अरब देशों में 30–40 वर्षों में समाप्त हो जाने वाले तेल भंडारों से तेल आयात करने या धोखेबाज पाकिस्तान में पाईपलाईन लगाने

अन्धभक्त सरकारी उच्चाधिकारी व राजनेता गाय को दूध व मांस उत्पादन का साधन और मांस निर्यात को उद्योग मानकर भारत के हर प्रान्त में विशाल कत्लखानों का जाल बिछा रहे हैं। गोवंश को कटने के लिए ट्रकों व बंद वैगनों में ले जाने में सहयोग कर रहे हैं।

की या हजारों करोड़ की रायल्टी देने की आवश्यकता ही नहीं है।

भारतीय गोवंश के गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, व घी के पंचगव्य से निर्मित औषधियां सर्दी जुकाम से लेकर कैंसर, कोढ़, मधुमेह, हृदय रोग जैसे असाध्य रोगों पर रामबाण सिद्ध हुई हैं। गाय के गोबर एवं गाय के घी के हवन से अणुविकिरणों से बचने व पर्यावरण आदि शुद्ध रखने की अतुलनीय सामर्थ्य भी जगजाहिर हो चुकी है।

भारत की गिर, साहीवाल जैसी दुधारू जातियां कम खर्चे की सामान्य व्यवस्था में शून्य से 47 डिग्री तापमान वाले चिली, ब्राजील, इजरायल जैसे देशों में जरसी हास्टिन से कई गुना अधिक दूध देती हैं। भारत के मुबंई, कोलकाता, चेन्नई जैसे महानगरों के दूध विक्रेता हर वर्ष देश भर की हरियाणा, गिर, साहीवाल, थारपारकर, अंगोला जैसी दुधारु गायें चुन चुनकर शहरों में ले आते हैं। भरपूर लाभ कमाने के बाद जब ये गाएं दूध देना बंद करती हैं तो गायों के लिए चारा पानी का खर्च करने के बजाय उन्हें कसाईयों को बेच देते हैं। इससे भारत का बहुसंख्यक दुधारु गोवंश नष्ट हो चुका है। सरकार की संकरीकरण की अतिवादी नीति से देशी दुधारू जाति के गाय और सांड दोनों का मिलना दुर्लभ हो गया है। इधर यूरोप, अमरीकी वैज्ञानिकों के अन्धभक्त सरकारी उच्चाधिकारी व राजनेता गाय को दूध व मांस उत्पादन का साधन और मांस निर्यात को उद्योग मानकर भारत के हर प्रान्त में विशाल कत्लखानों का जाल बिछा रहे हैं। गोवंश को कटने के लिए ट्रकों व बंद वैगनों में ले जाने में सहयोग कर रहे हैं। भरतीय गोवंश को कम दूध देनेवाला निरुपयोगी पशु बताकर प्रतिदिन 50 हजार गोवंश के साथ दूध व खाद देनेवाली असंख्य भेड़ों, बकरियों व भैसों का कत्ल कर सही मायने में सरकार किसानों का कत्ल कर रहे हैं।

भारत सरकार द्वारा यूरोप, अमरीका से सुअरों व गायों का मांस बढ़ाने वाले, दाल के लिये अनुपयोगी और केवल 15 प्र.श. तेलांश वाले सोयाबीन उत्पादन के लिए आकाश पाताल एक करने और सोयाबीन सहित सभी खलियों के निर्यात करने के भयंकर दुष्परिणाम हुये हैं। सोयाबीन उत्पादन बढ़ने से दूध वर्धक तिलहन, दलहन, चुनी उत्पादन की कमी हुई है जिसके कारण दूध घी का उत्पादन घट गया है। इसका एक परिणाम दूध, छाछ और दालों की कमी से गरीब जनता कुपोषण का शिकार बन गई और अमीर लोग गाय की चर्बी, मछली के तेल व जिलेटीन से निर्मित नकली मक्खन और डिटर्जेंट यूरिया मिश्रित दूध की भारी कीमत चुकाकर बीमारियाँ खरीदने को मजबूर हो गये हैं।

जनसंख्या के अनुपात में अमरीका से भारत में चौगुना दूध उत्पादन होने के पहले ही विश्व का सर्वाधिक दूध उत्पादक देश होने का दावा करने की गलत नीति के कारण देश के गरीब–अमीर दोनों वर्ग बेमौत मर रहे हैं। दूसरा परिणाम सन 1999–2000 में 1 लाख 30 हजार टन विदेशी दूध पावडर के आयात – सन 2002–03 में 10 हजार करोड़ कीमत के 50 लाख टन विदेशी तेल के आयात – भारी मात्रा में विदेशी मक्खन, घी के आयात तथा तिलहन मूंग, तुअर और दालों आदि के प्रतिवर्ष बढ़ते हुए आयात निर्यात में जहाज भाड़ा ब्याज, बीमा मजदूरी व मुनाफे की अरबों रुपयों की विदेशी मुद्रा की विदेशी कंपनियों द्वारा भयंकर लूट चल रही है।

भारत को इस भयंकर बरबादी से बचाने की सामर्थ्य गोवंश आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में है। भारत के 74 करोड़ ग्रामीण जनता के प्रकाश, सिंचाई व ग्रामोद्योग के लिये आवश्यक बिजली, डीजल, पेट्रोल से चलने वाले वाहनों के जैविक ईधन, चूल्हे की ईधन, जैविक खाद, कीटनियंत्रक प्रदूषणमुक्त खाद्यान्न, दूध–घी व पशुधन की बिक्री द्वारा किसान का समग्र विकास साधकर सारे भारत को सुखी, समृद्ध, निरोगी व स्वावलंबी बनाने की असीम सामर्थ्य भारतीय गोवंश में है। भारत सरकार पूरी शक्ति लगाकर भी 30 वर्षों में केवल 1 प्रतिशत जरसी, हास्टिन नस्ल निर्माण नहीं कर सकी। लेकिन दीनदयाल शोधसंस्था चित्रकूट व रामचन्द्र पुरम् मठ शिमोगा, कर्नाटक तथा अनेक सेवाभावी गौशालाओं व गुजरात सरकार के अथक प्रयासों से 30 वर्षों में 100 प्र.श. भारतीय शुद्ध देशी दुधारू गोवंश का निर्माण कर भारत में दूध–घी की नदियाँ बहाने की पुनः योजना चल रही है पर इसके लिए जन जागरण द्वारा संपूर्ण गोवंश हत्याबंदी व मांस निर्यात बंदी कानून बनाने के लिये केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को मजबूर करना और गोवंश का आरक्षण करना हम सब का राष्टधर्म है। ❖

परमाणु करार की जल्दबाजी नहीं

परमाणु करार पर भारत की पहल को चिंताजनक बताते हुए देश के वैज्ञानिकों ने प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह को सलाह दी है कि जब तक वरिष्ठ वैज्ञानिकों की चिंताओं को दूर नहीं कर दिया जाता तब तक भारत को असैनिक परमाणु करार पर दस्तखत करने में जल्दबाजी नहीं दिखानी चाहिए। भले ही राष्ट्रपति बुश ने समझौते पर अपने यहाँ सहमति प्राप्त कर ली हो लेकिन देश के हित में आगे बढ़ने से पहले गंभीरता से सोच–विचार कर लेना चाहिए। परमाणु ऊर्जा सेवानिवृत कल्याण संगठन (एर्डआरडब्ल्यू) के सदस्यों का कहना है कि भारतीय जनता का एक बड़ा वर्ग अमरीकी कांग्रेस में पारित विधेयक के प्रावधानों को नहीं जानता। अगर एक बार दस्तखत कर दिए तो कानून लागू हो जाएगा जो आने वाली पीढ़ियों के हित में नहीं होगा। वैज्ञानिकों ने कहा कि समझौते की भेदभावपूर्ण प्रवृत्ति को देखते हुए आठ दिसम्बर को पारित इस विधेयक का अध्ययन करना जरूरी है। उन्होंने कहा कि अगर हम अमरीका की शर्तों पर समझौता मंजूर करते हैं तो यह भारत के हित में कतई नहीं होगा। अपनी 50 साल की प्रगति को देखकर हमें भेदभावपूर्ण प्रक्रिया मंजूर नहीं करनी चाहिए। इसी बीच परमाणु उर्जा आयोग के अध्यक्ष श्री अनिल कोकदरकर ने गुरूवार को स्वीकार किया कि इस मसले पर ''चिंताएं'' हैं, जिस पर अमरीका से स्पष्टीकरण लेना आवश्यक है। उहोंने कहा कि हमारी चिंता यह है कि वर्तमान समझौता हमारे स्वदेशी परमाणु अनुसंधान प्रक्रिया में अनावश्यक व्यवधान डाले।

परमाणु ऊर्जा में भारतीय आत्मनिर्भता का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसा तभी संभव है जब हम फांस ब्रीर रिएक्टर एवं थोरियम आधारित रियक्टर के विकास पर अपना ध्यान केंद्रित करें। यदि ऐसा संभव हो जाएगा तो भारत 2050 तक 2,70,000 मेगावाट बिजली पैदा कर सकता है।

भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसान एकजुट

किसानों की उपजाऊ जमीन अधिग्रहण कर मल्टीनेशनल कंपनियों को देने के खिलाफ देश के कई किसान संगठनों ने एकजुट हो आंदोलन की राह पकड़ ली है। किसानों का आरोप है कि विदेशी एवं बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में खेल रही यूपीए सरकार किसानों की उपजाऊ जमीन मल्टीनेशनल कंपनियों को देकर मोटी कमाई कर रही है। अमृतसर और संगरूर जिलों में एसईजेड के लिए जमीन अधिग्रहित किए जाने के विरोध में 13 दिसंबर को कई किसान संगठनों ने राज्य में कई जगह यातायात जाम कर सड़क एवं रेल का मार्ग रोक दिया। अमृतसर स्टेशन के पास किसानों ने कई घंटे तक ट्रेनें नहीं चलने दीं जिस कारण रेल यातायात प्रभावित हुआ। उल्लेखनीय है कि संगरूर में ट्राइडेंट ग्रुप ऑफ इंडस्ट्रीज के लिए 376 एकड़ कृषि योग्य जमीन और अमृतसर में सेज के लिए 1200 एकड़ खेती लायक जमीन अधिग्रहित की गई है। किसानों ने अधिग्रहण का विरोध कर रहे किसान नेताओं के खिलाफ दायर मुकद्मा वापस लेने के अलावा अधिग्रहित भूमि वापस करने और वर्ष 2005 में वर्षा की कमी से नष्ट हुई फसल का मुआवजा देने की भी मांग की है। किसान नेताओं ने कहा है कि किसानों को अपनी जमीन बेचनी है अथवा नहीं यह उनकी मर्जी पर निर्भर होना चाहिए, और इसके लिए कंपनियों को किसानों से सीधा संपर्क करना चाहिए।

परमाणु जरूरत के लिए जापान से समर्थन की उम्मीद

भारत को आर्थिक संकट से निपटने में 1991 में जापान से मिले अभूतपूर्व सहयोग के बाद एक बार फिर भारत ने परमाणु जरूरत के लिए जापान से समर्थन मिलने की उम्मीद की है। जापानी संसद को संबोधित करते हुए भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने जापान के साथ एक नई भागीदारी की आकांक्षा के तहत उससे अपील की है कि वह भारत की बढ़ती ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के नवीन व भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण को अस्तित्व में लाने के लिए अपना समर्थन दें। प्रधानमंत्री ने आर्थिक रिश्तों को तीव्र गति देने की वकालत करते हुए कहा कि इन्हें भारत–जापान संबंधों का आधार बनाना चाहिए। जापानी संसद को प्रधानमंत्री ने बताया कि जापान की तरह भारत भी अपनी बढ़ती ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए ऊर्जा के एक जीवंत व साफ स्रोत की अपेक्षा रखता है। इस मौके पर प्रधानमंत्री ने जापान से आतंकवाद, संयुक्त राष्ट्र में सुधार, दोतरफा रक्षा व आर्थिक सहयोग का आश्वासन भी मांगा। आतंकवाद को उदार समाज में शांति व सौहार्द के लिए एक समान खतरा बताते हुए इसे एक जटिल समस्या बताया। प्रधानमंत्री ने यह भी कहा कि जब तक भारत और जापान मिलकर एक साथ काम नहीं करेंगे, आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई नहीं जीत सकते।

विकसित राष्ट्र के मार्ग में कई चुनौतियाँ

प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा है। कि विकसित राष्ट्र बनने के मार्ग में देश के सामने अभी भी कई चुनौतियाँ हैं। प्रधानमंत्री ने कहा कि इन चुनौतियों से निपटने के लिए वित्तीय तथा आवश्यक सार्वजनिक सेवाओं में विस्तार के अतिरिक्त ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जाना जरूरी है। राजधानी में आर्थिक अनुसंधान संस्था नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च (एनसीएईआर) के स्वर्ण जयंती समारोह को संबोधित करते समय संस्थान द्वारा देश के ग्रामीण

इलाकों में बुनियादी सुविधाओं पर केन्द्रित भारत की ग्रामीण अवसंरचना पर एक रपट भी जारी की गई। प्रधानमंत्री ने यह कहकर अपनी चिंता की पुष्टि भी की कि यह मानना बिल्कुल गलत होगा जैसा कुछ लोग मानते हैं कि विकास के मार्ग में प्रमुख चुनौतियों का समाधान निकाल लिया गया है और भारतीय अर्थव्यवस्था अब बिना किसी प्रयास के ही एक विकसित राष्ट्र बनेगी। उन्होंने कहा कि विकसित राष्ट्र बनाने के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने के साथ ही आवश्यक सार्वजनिक वस्तुओं की आपूर्ति में सुधार करने, शहरी क्षेत्रों में बेहतर प्रबंधन, बृहद सहभागिता तथा वित्तीय प्रणाली में वैश्विक स्तर पर समन्वय बनाने व आधारभूत ढांचा क्षेत्र में निजी निवेश के लिए किफायती नियमन व्यवस्था स्थापित करने की जरूरत है।

रतनजोत और बायोडीजल अपनाना उचित

विदेशी एवं बहुराष्ट्रीय तेल कंपनियों के दबाव में केन्द्र सरकार भले ही रतनजोत एवं बायोडीजल की योजना पर तबज्जो नहीं दे रही और इसे नुकसान का सौदा मानकर खारिज कर दिया हो लेकिन केन्द्र की इस दलील से बेपरवाह छत्तीसगढ़ की सरकार बायोडीजल और रतनजोत की खेती को प्रोत्साहित करने में लगी है। रतनजोत और बायोडीजल पर केन्द्रीय पेट्रोलियम मंत्रालय की टिप्पणी को छत्तीसगढ़ प्रशासन ने यह कहकर नकार दिया कि यह खेल तेल कंपनियों का कुचक्र है, जबकि इस राज्य में बायोडीजल का उत्पादन और रतनजोत की खेती दोनों ही प्रभावित नहीं होंगे। छत्तीसगढ़ में 50 हजार हेक्टेयर क्षेत्र में बायोडीजल से जुड़ी फसलें रोपी गई हैं। 88 हजार हेक्टेयर जमीन इसके लिए चिन्हित की गई है, और अब तक 24 करोड़ रतनजोत के पौधे लगाए गए हैं। 25सौ टन उत्पादन क्षमता वाले बायोडीजल संयंत्र में प्रतिवर्ष 300 मेगावाट विद्युत निर्माण की भी योजना है। राज्य सरकार का दावा है कि वहाँ प्रतिदिन 3 हजार लीटर बायोडीजल का उत्पादन हो रहा है। बायोडीजल विकास प्राधिकरण के कार्यपालक निदेशक एस.के. शुक्ला का कहना है, रतनजोत और बायोडीजल के विरोध का खेल तेल कंपनियों का खड़ा किया गया वावेला है, क्योंकि अकेले बायोडीजल से इन कंपनियों को इस देश में एक लाख 92 हजार करोड़ रुपये के आयात का बाजार हिलता नजर आ रहा है।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़

राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने देश में गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) जीवन यापन कर रहे 22 करोड़ लोगों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) को 8 प्रतिशत से बढ़ाकर 10 प्रतिशत करने का सुझाव दिया है। राष्ट्रपति ने कहा है कि 10 प्रतिशत की विकास दर एक दशक तक बनी रहने की दिशा में ही बीपीएल की जीवन दशा सुधर सकती है। अब सवाल उठता है कि क्या भारत जीडीपी की दर दस प्रतिशत करने में कामयाब हो पाएगा राष्ट्रपति ने कहा कि यह सही है कि भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से प्रगति कर रही है और यह भी सही है कि कृषि क्षेत्र का इस देश की जीडीपी बढ़ाने में 25.2 प्रतिशत का योगदान है, लेकिन क्या इससे गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों के स्तर में उम्मीद के मुताबिक तब्दीली आएगी। देश की कुल श्रमशक्ति का लगभग 64 प्रतिशत हिस्सा कृषि कार्य में लगा हुआ है और इसी के अनुपात में बीपीएल की संख्या शहरी आबादी से अधिक ग्रामीण इलाकों में है। इसका मतलब है कि भारतीय

ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना पर चिंता

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना को सही ढंग से लागू नहीं किए जाने पर चिंता जताते हुए राज्यसभा में सदस्यों ने कहा कि योजना के कार्यान्वयन में पारदर्शिता होनी चाहिए और लापरवाही बरतने वालों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई का प्रावधान होना चाहिए। कांग्रेस के वी नारायणस्वामी ने कहा कि देश के कुछ राज्यों में इस योजना को लागू करने वाली एजेंसी और राज्य सरकारें ढिलाई बरत रही हैं और कुछ राज्यों में इस योजना के आबंटित धन का सही इस्तेमाल नहीं हो रहा है। नारायणस्वामी ने आरोप लगाया कि कुछ राज्य इस योजना को लेकर केंद्र सरकार की ओर से जारी दिशानिर्देशों का उल्लंघन कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस योजना को लेकर दलगत राजनीति नहीं होनी चाहिए। योजना के कार्यान्वयन में लापरवाही बरतने वालों के खिलाफ कार्रवाई की मांग करते हुए उन्होंने सरकार से जानना चाहा कि 2007–08 के दौरान इस योजना के तहत कौन से नए जिले शामिल किए जाएं और कुल कितने धन का आबंटन होगा।

भाजपा के एम. वेंकैया नायडू ने कहा कि यह योजना यूपीए के न्यूनतम साझा कार्यक्रम का हिस्सा थी लेकिन सरकार ने इसे लागू करने में डेढ़ साल का लंबा समय लगा दिया। यह योजना समूचे देश में लागू करने का वायदा किया गया था, लेकिन शुरू में केवल 200 जिलों को ही इसके तहत शामिल किया गया। नायडू ने कहा कि योजना को लेकर जनता के बीच पर्याप्त जागरुकता का भी अभाव है। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि नौकरशाही ने इस योजना पर नियंत्रण कर रखा है, इसलिए इसका कार्यान्वयन उचित ढंग से नहीं हो पा रहा है। उन्होंने केंन्द्रीय ग्रामीण विकास मंत्री से जानना चाहा कि योजना के क्रार्यान्वयन के लिए कितने धन की जरूरत है और वित्त मंत्रालय की ओर से कितना धन आबंटित किया गया है। इस योजना की शुरूआत प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और यूपीए अध्यक्ष सोनिया गांधी ने आंध्र प्रदेश के अनंतपुर से की थी, लेकिन इसी राज्य से योजना के कार्यान्वयन को लेकर गंभीर शिकायतें मिल रही हैं। ऐसे में अन्य राज्यों में योजना की स्थिति की कल्पना आसानी से की जा सकती है। समाजवादी पार्टी के नंद किशोर यादव ने कहा कि देश में सबसे ज्यादा समय तक शासन करने वाली कांग्रेस की गलत नीतियों के कारण ग्रामीण बेरोजगारी और महंगाई बढ़ी है, और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना के तहत केवल 100 दिनों के कार्य से गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले पूरे परिवार का भरण पोषण संभव नहीं है।

गरीबों के चूल्हे–चौके पर भी कटौती की मार

केन्द्र सरकार की वर्तमान अनाज नीति के कारण देश के गरीबों को भी अन्न के लिए तरसना पड़ सकता है। अन्न की कड़की से जूझ रहे राज्यों के खाद्यान्न कोटे में कटौती के गुपचुप तरीके से गरीबों के चूल्हे–चौके अछूते नहीं रहेंगे। गेहूँ के बाद सरकार ने अब चीनी का पर्याप्त भंडार होने के बावजूद इसमें कटौती कर दी है।

केंद्रीय खाद्य मंत्रालय ने अपनी कटौती नीति पर चुपचाप अमल भी शुरू कर दिया है। इस फैसले से राशन की दुकानों के भरोसे पेट पालने वाले गरीबों के लिए पूस–माघ का महीना वाकई मुश्किलों से भरा होगा। सरकारी आँकड़ों के अनुसार नवंबर 2005 में केन्द्र की ओर से राज्यों को 24 लाख टन गेहूँ का आवंटन किया गया था, जबकि नवंबर 2006 में सिर्फ 8.9 लाख टन गेहूं का ही आवंटन किया गया। इससे साफ है कि आवंटन में पिछले साल की तुलना में ढाई गुने से भी ज्यादा की कटौती हुई है। इसी बीच खाद्य मंत्रालय ने एक और फैसला किया, जिससे आम आदमी की सुबह की चाय कड़वी होगी। इसकी वजह राज्यों को आवंटित चीनी में कटौती है। केंद्र सरकार ने कुछ साल पहले ही प्रति व्यक्ति चीनी की खपत को हर माह 425 ग्राम से बढ़ाकर 500 ग्राम कर दिया था। लेकिन अब इसमें कटौती कर दी गई है। मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी का कहना है कि राशन प्रणाली के लिए चीनी की जितनी जरूरत है, उतनी उपलब्ध नहीं है। चीनी की यह मात्रा मिलों से 10 प्रतिशत लेवी के रूप में वसूली जाती है, जो 20 लाख टन से अधिक नहीं है, जबकि राशन दुकानों की कुल जरूरत 28 लाख टन की होती है। ऐसे में आठ लाख टन के इस अंतर को पाटने के लिए ही कटौती का फैसला किया गया है।

अर्थव्यवस्था की रीढ़ मजबूत करने के लिए कृषि पर निर्भर रहना ही होगा। कृषि क्षेत्र में प्रगति किए बगैर औद्योगिक क्षेत्र में आशानुकूल तरक्की नहीं की जा सकती।

सच्चर समिति की रपट पर सवालिया निशान

वोट की राजनीति से ग्रसित देश के राजनीतिक दल सच्चर समिति की रपट की सराहना कर भले ही अल्पसंख्यकों को गुमराह करें लेकिन इलाहाबाद हाईकोर्ट ने केन्द्र सरकार से यह सवाल कर कि क्या देश के अल्पसंख्यक अभी तक अपने अधिकारों से वंचित रहने का खतरा झेल रहे हैं, सच्चर समिति की रपट पर ही सवालिया निशान लगा दिया है। हाईकोर्ट ने कहा कि क्या अल्पसंख्यकों को अभी भी किसी प्रकार के संरक्षण की जरूरत है, क्या इस प्रकार के संरक्षण से बहुराष्ट्रवाद के बीज नहीं पनपेंगे। इलाहबाद हाईकोर्ट के न्यायमूर्ति एस.एन. श्रीवास्तव ने केन्द्र सरकार से सच्चर समिति की रपट की एक प्रति और जनसंख्या के आंकड़े उपलब्ध कराने के लिए भी कहा है ताकि जिस दिन भारत का संविधान लागू हुआ उस दिन से 2001 तक अल्पसंख्यक आबादी के प्रतिशत में बदलाव की जानकारी मिल सके। हाईकोर्ट ने सरकार से यह सवाल उस समय किया है जब वह उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के अंजुमन मदरसा नूरूल इस्लाम देहरा केन की याचिका पर सुनवाई कर रहा था, जिसमें अल्पसंख्यकों के लिए काम दिए जाने की बात कही गई है।

वैज्ञानिक प्रशिक्षण की जड़ें कमजोर

प्रमुख शिक्षाविद प्रो. यशपाल ने कहा है कि भारत जितनी तीव्र गति से आर्थिक प्रगति कर रहा है, हमारी वैज्ञानिक प्रगति उसके साथ कदमताल नहीं कर पा रही। अभी यह बात भी सामने आई है कि सार्वजनिक वैज्ञानिक संस्थाओं में वैज्ञानिकों की खासी कमी महसूस की जा रही है। बहुत से युवा इंजीनीयर सार्वजनिक संस्थाओं में काम करने के बजाय निजी क्षेत्रों में काम करने के लिए जा रहे हैं, और जो लोग पहले से सार्वजनिक वैज्ञानिक संस्थाओं में काम करते थे, वे भी अब निजी क्षेत्र में ही जाने लगे हैं, क्योंकि वहां उन्हें ज्यादा पैसा मिलता है। इसका कारण है कि बुनियादी शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक हम वैश्विक मानकों पर अभी काफी पीछे हैं। अब भी देश में 90 प्रतिशत लोग कॉलेज तक नहीं पहुंच पाते और दस फीसदी जो लोग पहुंचते हैं, उनमें महज दो या तीन प्रतिशत लोग ही विज्ञान की पढ़ाई करते हैं। फिर ऐसे में कैसे संभव है कि हमारे पास पर्याप्त वैज्ञानिक हों। आज पहली जरूरत इस बात की है कि देश की बुनियादी शिक्षा को मजबूत किया जाए। जिससे उच्च शिक्षा तक पहुंचने वालों की संख्या बढ़े।

भारत में बाल विवाह

यूनीसेफ की रपट के मुताबिक भारत में विवाह की औसत उम्र धीरे–धीरे बढ़ तो रही है, लेकिन बाल विवाह की कुप्रथा अभी भी बड़े पैमाने पर प्रचलित है। रपट के अनुसार भारत में औसतन 46 फीसदी महिलाओं का विवाह 18 वर्ष की होने से पूर्व कर दिया जाता है, जबकि ग्रामीण इलाकों में यह प्रतिशत 55 फीसदी है। लड़कियों के विवाह की सबसे कम उम्र की दृष्टि से राजस्थान (16.6 वर्ष) देश में अब्बल नम्बर पर है। इसके बाद म.प्र. (17 वर्ष) और बिहार का (17.2 वर्ष) जहाँ कम उम्र होने पर ही कन्याएं ब्याही जाती हैं जो कि पूरे देश में बालिकाओं के

विवाह की अधिकतम औसत उम्र है। यूनीसेफ द्वारा दुनिया के बच्चों की स्थिति रिपोर्ट–2007 में बताया गया है कि कानून द्वारा विवाह की तय उम्र सीमा का भारत में जमकर उल्लंघन हो रहा है। जो लड़कियों और उनके होने वाले बच्चों के लिए गंभीर खतरा है। यही नहीं कम उम्र में विवाह होने से वे लड़कियाँ शिक्षा से भी वंचित रह जाती हैं।

उर्वरकों की कमी से प्रभावित किसान

उर्वरकों की कमी से इस देश का किसान प्रभावित हो रहा है, लेकिन कृषि मंत्रालय कान में तेल डालकर लंबी तानकर सो रहा है। उर्वरकों की कमी की शिकायत पर ध्यान नहीं देने वाले कृषि मंत्री शरद पवार के गृह राज्य में जब उर्वरकों की कमी का दंश झेल रहे किसानों ने गोदामों पर हमला करना शुरू किया तो उनका मंत्रालय हरकत में आया। इससे ठीक पहले केन्द्रीय रसायन व उर्वरक मंत्री रामविलास पासवान ने अखबारों में छप रही उर्वरकों की कमी की खबरों पर संज्ञान लेते हुए केवल विज्ञापन छपवाकर मंत्रालय के आंकड़ों से यह साबित करने का प्रयास किया कि उर्वरकों की कहीं कोई कमी नहीं है। पासवान के इस आदेश से कृषि मंत्रालय भी सकते में आ गया कि अगर उर्वरकों की जब कमी नहीं है, तो आखिर किसानों को उर्वरक क्यों नहीं मिल पा रहा।

राज्यवार विदेशी पूँजी निवेश

(प्रस्ताव जो जनवरी 1999 एवं 2005 के बीच अनुमोदित हुए)

राज्य	अनुमोदनों की संख्या	मात्रा (करोड़ रुपये)	कुल प्रतिशत
महाराष्ट्र	2629	21969	22.78
दिल्ली	1937	12604	13.07
तमिलनाडु	1296	10693	11.09
कर्नाटक	1517	9271	9.61
गुजरात	331	5723	5.93
आंध्र प्रदेश	633	3988	4.14
प. बंगाल	258	2252	2.34
मध्य प्रदेश	54	2248	2.33
उत्तर प्रदेश	236	1938	2.01
हरियाणा	227	1750	1.81
पंजाब	57	1236	1.28
केरला	184	1217	1.26
पांडिचेरी	50	993	0.97
हिमाचल	17	892	0.92
राजस्थान	81	791	0.82
बिहार	6	632	0.66
गोवा	157	570	0.59
उड़ीसा	24	473	0.49
छत्तीसगढ़	7	216	0.22
चड़ीगढ़	57	186	0.19
दमन द्वीप	15	41	0.04
दिल्ली	3	36	0.04
झारखंड	8	27	0.03
अन्य	22	16	0.01
अन्य राज्य जो सूची में नहीं हैं	987	16733	17.35

दृष्टिपत्र को मंजूरी

राष्ट्रीय विकास परिषद की दिसम्बर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिपत्र को मंजूरी दे दी गई है। इसके साथ ही बैठक में बहुत से मुद्दे बिना निष्कर्ष पर पहंचे ऐसे ही छोड़ दिए गए। बैठक में राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने केन्द्र पर जमकर हमला बोला व अपने हक की मांग की। पहाड़ व मैदान के मुद्दे पर प्रधानमंत्री ने पहाड़ी राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा बरकरार रखने का फैसला लिया।

दृष्टिपत्र

- पांच प्रतिशत अधिक (जीडीपी का 35 प्रतिशत) करने का लक्ष्य।
- निवेशकों के अनुकूल माहौल बनाना।
- कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता।
- 2007 में कौशल विकास मिशन की शुरूआत की कंपनियों के नुकसान को नियंत्रित करना।
- 2012 तक 40 हजार किलोमीटर लंबे राजमार्गों का विकास।
- भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकार की पुनर्रचना।
- 60 से 70 हजार मेगावाट अतिरिक्त बिजली क्षमता जोड़ना।

राज्यों की वित्तीय स्थिति सुधारने के लिए एनडीसी की उपसमिति की रिपोर्ट को भी स्वीकार कर लिया गया। इस रिपोर्ट में राज्यों के 1991 से 2003 तक के बकाये पर ब्याज दर 11.5 से घटाकर 10.5 फीसदी करने और उसके बाद 9.6 प्रतिशत करने को सुझाव दिया गया है। बैठक में कृषि दर बढ़ाने को लेकर हुई बातचीत किसी ठोस नतीजे पर नहीं पहुंच पाई। प्रधानमंत्री ने राज्यों को भी संसाधन जुटाने और योजनाओं में भागीदारी करने का आह्वान किया। राज्यों ने उनके आह्वान का विरोध किया, उनका कहना था कि करों का संग्रह केन्द्र करती है, इसलिए योजनाओं पर खर्च की जिम्मेदारी भी उसकी ही है। मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने कहा कि राज्य सरकारें पांचवें वेतन आयोग की सिफारिशें लागू कर दिवालिया हो चुकीं हैं। राज्य सरकारें अपने पांव पर खड़े होने का जैसे–तैसे प्रयास कर रही हैं। इसलिए केन्द्र को अपनी योजनाओं के लिए धन देना ही होगा। सर्व शिक्षा अभियान पर हो रहे खर्चे की वहन करने की जिम्मेदारी राज्य व केंन्द्र के लिए योजना आयोग ने 50:50 फीसदी उठाने का प्रस्ताव रखा, जिसे राज्यों ने नहीं माना। राज्यों कहना था कि शिक्षा पर केन्द्र सरकार ने उपकर लगाया हुआ है जिससे नौ हजार करोड़ की उगाही होती है, तो फिर राज्य पैसा क्यों दें। पहाड़ी व मैदानी राज्यों का झगड़ा आज सरेआम हो गया। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब पहाड़ी राज्यों को विशेष राज्य का दर्जा देने का विरोध कर रहे हैं। योजना आयोग ने सुझाव दिया था कि पहाड़ी राज्यों के मैदानी इलाकों में उद्योगों को करों में लाभ न मिले। पहाड़ी राज्यों खास कर उत्तरांचल व हिमाचल ने इस प्रस्ताव का विरोध किया।

विकासशील देशों के हितों की रक्षा जरूरी

दोहा विकास वार्ता में अभी तक प्रारंभिक सक्रियता दिखाते हुए भारत सहित सभी विकासशील देशों ने पश्चिमी देशों के दबावों का सफलतापूर्वक सामना कर गतिरोध को दूर करने का प्रयास किया है। यह विकासशील देशों के बढ़ते अनुभवों का उदाहरण है और इसका महत्त्व इसलिए भी है क्योंकि डब्ल्यूटीओ में विकास वार्ता का शायद यह अंतिम मौका है। यह बातें भारत के वाणिज्य सचिव श्री जी.के. पिल्लई ने दिल्ली में सेन्टाड द्वारा डब्ल्यूटीओ पर आयोजित द्विदिवसीय परिचर्चा में कहीं। सेन्टाड द्वारा दक्षिण एशियाई देशों के लिए आयोजित किया जाने वाला यह दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार था। श्री पिल्लई ने कहा कि वर्तमान वार्ताएं दो या अधिक वर्षों तक भी यदि निलंबित रहती हैं तब भी भारत को घबराने की जरूरत नहीं है। ध्यान यह रखना है कि इन वार्ताओं में विकास के मुद्दे छूटने नहीं पाएं। हालांकि उन्होंने उपस्थित लोगों का आह्वान किया कि वे लोग आगामी दो महीने तक काफी सतर्कता बरतें क्योंकि वार्ता की दिशा इसी बीच तय हो सकती है। वर्तमान गतिरोध के कारण एवं निवारण के उपायों का उल्लेख करते हुए वाणिज्य सचिव ने कहा कि अमरीका एवं यूरोपीय देशों द्वारा केवल कृषि सब्सिडी में कटौती से बात नहीं बनने वाली है। उत्पाद के अनुसार सब्सिडी का निर्धारण एवं मद–दर–मद मुद्दों का निस्तारण ही समस्या का एकमात्र समाधान है।

सेमिनार में मुख्य भाषण करते हुए गैट में भारत के पूर्व राजदूत रहे श्री बी.एल. दास ने कहा कि 2006 के जुलाई में दोहा विकास वार्ता का स्थगित होना बहुपक्षीय व्यापार तंत्र में अन्तर्निहित खामियों का ही प्रतिफल था। भारत को वार्ता पुनः शुरू होने को लेकर किसी भी प्रकार के मनोवैज्ञानिक एवं राजनैतिक दबाव में आने की जरूरत नहीं है।

इस कार्यक्रम में विकासशील देशों के प्रमुख प्रतिनिधियों एवं विशेषज्ञों ने स्वीकार किया कि पाटनरोधी शुल्क एक संरक्षणवादी हथियार ही नहीं अपितु विकासशील देशों के उद्योगों को बचाने का अमोघ अश्त्र भी है, जो विदेशों से सब्सिडी प्राप्त सस्ते आयातों की मार से देश की रक्षा करता है। दो दिन के इस सेमिनार में कृषि का संकट, विवाद निपटान, सेवा क्षेत्र, बौद्धिक संपदा एवं व्यापार हेतु सहयोग आदि मुद्दों पर गंभीर चर्चाएं हुई।

नीम और हल्दी का पेटेंट विदेशी कम्पनियों को नहीं

विश्व व्यापार संगठन का दरवाजा खटखटाने के बाद भारत को उम्मीद है कि नीम और हल्दी का पेटेंट अब विदेशी कंपनियों को नहीं मिलेगा। देश की विशेष भौगोलिक परिस्थितियों में पैदा होने वाली दुर्लभ जड़ी बूटियों और पौधों का विदेशी कंपनियों द्वारा पेटेंट अपने नाम कर लेने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए ही भारत ने विश्व व्यापार का दरवाजा खटखटाया है। वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री कमलनाथ ने लोकसभा को बताया कि भारत ने डब्ल्यूटीओ से व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार के नियमों में संशोधन करने का आग्रह किया है। सांसदों ने हाल ही में अनेक विदेशी कंपनियों द्वारा कई भारतीय जड़ी बूटियों और पौधों के नाम पर पेटेंट हासिल कर लेने पर चिंता व्यक्त की थी। सांसदों ने अपनी चिंता में उल्लेख किया था किसी भी उत्पाद पर पेटेंट देने से पहले उत्पाद विशेष के स्थल और उसके पैदा होने की वास्तविक जानकारी होनी चाहिए। ज्ञातव्य हो कि वाणिज्य मंत्रालय में ऐसे सभी परम्परागत ज्ञानों एवं प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा के लिए डिजिटल लाईब्रेरी बनाया है ❖

सेवा का व्यापार और भारत पर पुस्तक

विशेषज्ञों की हमेशा यह मांग रहती थी कि सेवा क्षेत्र से जुड़े आँकड़ों एवं तथ्यों की इस देश में कमी है और इसीलिए भारत विश्व व्यापार वार्ता में अपना पक्ष मजबूती से नहीं रख पाता है। ज्ञातव्य हो कि सेवा क्षेत्र का विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान है। विश्व अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र का योगदान 50–60 प्रतिशत के बीच है। जबकि जहां तक भारत का प्रश्न है तो भारत के सकल घरेलू उत्पाद में सेवा क्षेत्र का योगदान 54 प्रतिशत है। सेवा क्षेत्र से जुड़े तथ्यों की कमी को गैर सरकारी स्तर पर दूर करने का पहला सफल प्रयास किया गया है। दिल्ली स्थित सेन्टाड ने ''सेवा क्षेत्र'' में व्यापार और भारत ::संभावनाएं एवं रणनीति'' नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया है, जिसमें गंभीरता से सभी मुद्दों को आँकड़ों के एक साथ समेटने का प्रयास किया गया है। इस पुस्तक में विभिन्न शोधकर्ताओं एवं शिक्षाविदों ने अलग–अलग मुद्दों पर तथ्य एवं आलेखों का संकलन किया है। पुस्तक ने भारतीय अर्थव्यवस्था में सेवा क्षेत्र को लेकर जो एक शून्य की स्थिति थी उसको भरने का पूरा प्रयास किया है। जहाँ तक पुस्तक में आँकड़ों एवं तथ्यों के संकलन का प्रश्न है तो उस दृष्टि से यह पुस्तक काफी अच्छी है, लेकिन दृष्टिकोण को लेकर विभिन्न लेखों के बीच तालमेल की कमी दिखती है। 403 पृष्ठों की इस पुस्तक का संपादन अच्छा होने से पुस्तक अपेक्षित वर्ग के लिए काफी उपयोगी बन पड़ा है। सेन्टाड ने दक्षिण एशियाई व्यापार एवं विकास 2006 पर वार्षिक पत्र का भी प्रकाशन किया गया है।